कौटिल्य-अर्थशास्त्र में वर्णित राज्य की आर्थिक नीति का विश्लेषण: स्त्रियों के विशेष सन्दर्भ में

(Kauṭilya-Arthaśāstra meṁ Varṇita Rājya kī Ārthika nīti kā Viśleṣaṇa: Striyon ke Viśeṣa Sandarbha meṁ)

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय की एम. फिल्. शोध-उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध

शोधार्थी

रोहित कुमार सिंह

शोध-निर्देशक

डॉ० सन्तोष कुमार शुक्ल

सह शोध-निर्देशक

डॉ. अशोक कुमार

विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली – 67

भारत

2012

विशिष्टसंस्कृताध्ययनकेन्द्रम्
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली - ११००६७

SPECIAL CENTRE FOR SANSKRIT STUDIES
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
NEW DELHI – 110067

25 July, 2012

CERTIFICATE

The dissertation entitled ***'कौटिल्य-अर्थशास्त्र में वर्णित राज्य की आर्थिक नीति का विश्लेषण: स्त्रियों के विशेष सन्दर्भ में'*** *submitted by* **ROHIT KUMAR SINGH** *to Special Centre for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi – 110067 for the award of degree of* ***Master of Philosophy*** *is an original research work and has not been submitted so far, in part or full, for any other degree or diploma in any University. This may be placed before the examiners for evaluation.*

Prof. Shashiprabha Kumar	**Dr. Santosh Kumar Shukla**	**Dr. Ashok kumar**
(Chairperson)	**(Supervisor)**	**(C.E.S.P)**
		(Co-Supervisor)

विशिष्टसंस्कृताध्ययनकेन्द्रम्
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली - ११००६७

SPECIAL CENTRE FOR SANSKRIT STUDIES
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
NEW DELHI – 110067

25 July, 2012

DECLARATION

I declare that the dissertation entitled ***'कौटिल्य-अर्थशास्त्र में वर्णित राज्य की आर्थिक नीति का विश्लेषण: स्त्रियों के विशेष सन्दर्भ में'*** *submitted by me for the award of degree of* ***Master of Philosophy*** *is an original research work and has not been previously submitted for any other degree or diploma in any other institution/University.*

(ROHIT KUMAR SINGH)

समर्पण

स्वर्गीया ममतामयी माँ अमरावती देवी

के

पावन चरणों में

आत्मनिवेदन

सर्वप्रथम मैं इस शोध- प्रबन्ध कार्य को पूर्ण करने में अपने शोध निर्देशक डॉ. सन्तोष कुमार शुक्ल के प्रति हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ । जिनके निर्देशन में मुझे अनन्त धैर्य, निरन्तर ऊर्जा, अमूल्य मार्गदर्शन मिला तथा जिनके सतत प्रोत्साहन और परामर्श के बिना मैं इस शोध पत्र के पूरा होने की कल्पना भी नहीं कर सकता था । जिन्होनें इस शोध-कार्य के लिए मुझे न केवल मार्ग दर्शन दिया अपितु यथा सम्भव पर्याप्त सामग्री भी उपलब्ध करायी । अतः उनके अमूल्य योगदान को मैं शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकता ।

मैं सह शोध-निर्देशक डॉ. अशोक कुमार के प्रति भी सहृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जिन्होंने हर समय यथा सम्भव मुझे इस शोध-कार्य को पूरा करने में अपना मार्ग दर्शन प्रदान किया ।

विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र की अध्यक्षा, प्रो. शशिप्रभा कुमार को भी मैं अपना आभार व्यक्तत करता हूँ । जिन्होनें समय-समय पर अमूल्य समय देकर इस शोध कार्य में यथा सम्भव सहायता प्रदान की । विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र के गुरुजन डॉ रामनाथ झा, डॉ गिरीश नाथ झा, डॉ सी. उपेन्द्र राव, डॉ रजनीश कुमार मिश्र, डॉ हरिराम मिश्र का भी मैं सहृदय आभार प्रकट करता हूँ, जिन्होनें मुझे शिक्षा प्रदान करके इस इस योग्य बनाया ।

मैं अपने पूर्व गुरुजन प्रो. रामकिशोर शास्त्री और डॉ. जयप्रकाश वर्मा का भी हृदय से धन्यवाद ज्ञापन करता हूँ जिनके मार्गदर्शन में मुझे जे.एन.यू. जैसे उच्च संस्थान में प्रवेश मिला और इस क्षेत्र में मुझे हमेशा मार्गदर्शन प्रदान किया ।

जे.एन.यू. पुस्तकालय, दिल्ली वि.वि., एल.बी.एस. विद्यापीठ, इलाहाबाद पुस्तकालय के सभी सहायक कर्मचारियों का भी मैं आभार प्रकट करता हूँ, जिन्होनें इस शोध कार्य से संबन्धित विभिन्न ग्रन्थों एवं शोध पत्रिकाओं को उपलब्ध कराने में मेरी दिन-प्रतिदिन सहायता प्रदान की । इसी कड़ी में विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र के कर्मचारियों का विशेष रूप से मनीष जी का धन्यवाद ज्ञापन करता हूँ ।

मैं अपने परिवार के समस्त सदस्यों पिता श्री रुद्र प्रताप सिंह, भैया लवकुश, भाभी पुष्पलता और बहन कंचन व संतोष का भी हृदय से धन्यवाद ज्ञापन करता हूँ । मुझे अपने माता का जो

प्यार चाहिए वह नहीं मिल सका परन्तु मेरे पिता नें मुझे माँ की कमी महसूस नहीं होने दी और मुझे मातृवत् स्नेह भी दिया । वे ही मेरे माता-पिता दोनों हैं । जिन्होनें कठिन एवं विषम परिस्थितियों में भी मुझे इस विश्वविद्यालय में उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्रदान किया ।

इसके अतिरिक्त मैं अपनें बड़े पिता स्व. श्री गोपाल सिंह, श्री कृष्ण गोपाल सिंह तथा श्री नन्द गोपाल सिंह का आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने मुझे इस क्षेत्र में मार्गदर्शन प्रदान किया ।

मैं अपने बड़े भाई हरिशंकर, रविशंकर, धीरेन्द्र, नरेन्द्र, महेन्द्र, रमारमण, शैलेन्द्र का आभारी हूँ, जिन्होनें इस शोध-कार्य के लिए प्रोत्साहित किया ।

मैं अपनें वरिष्ठ सहपाठी रवि प्रताप सिंह और बबलू पाल को विशेष रूप से सहृदय अपना आभार प्रकट करता हूँ, जिन्होंने इस शोध-कार्य में हर तरफ से मेरी सहायता की है । अपने अन्य वरिष्ठ अनिल प्रताप गिरि जी, सूर्यकमल जी, विन्द जी, रजनीश जी, बलदेव जी, अशोक जी, प्रियंका जी का आभारी हूँ, जिन्होनें इस शोध कार्य में प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से सहायता प्रदान की है ।

अपने मित्रों में मैं सर्वेश, अनिल तथा विकास को सहृदय धन्यवाद करता हूँ, जिन्होनें हर तरफ से इस शोध कार्य में सहायता की है तथा अन्य मित्रों ठाकुर शिवलोचन, मणिशंकर, प्रवीण, चमन, अरविन्द, कपिल, देवी, कामिनी, सावित्री, वन्दना, प्रीति वर्मा व दिव्या का भी धन्यवाद ज्ञापन करता हूँ, जिन्होंने मेरे शोध-कार्य में सहयोग प्रदान किया है ।

मैं अपने प्यारे छोटे भाइयों में अरविन्द, भोला, विमल, प्रेमपाल, महेन्द्र का भी धन्यवाद ज्ञापन करता हूँ, जिन्होनें मेरे इस शोध कार्य में अपना सहयोग प्रदान किया ।

मैं केशव को विशेष रूप से धन्यवाद देता हूँ, जिसने मेरी तकनीकी रूप से हर समय हर सम्भव सहायता की ।

इन सब के अतिरिक्त मैं परम पिता परमेश्वर का धन्यवाद ज्ञापन करता हूँ, जिन्होंने मुझे इस कार्य को पूरा करने की शक्ति प्रदान की तथा उन सभी व्यक्तियों का धन्यवाद ज्ञापन करता हूँ, जिन्होंने मेरी प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से इस शोध कार्य को पूरा करने में सहायता प्रदान की ।

रोहित कुमार सिंह

विषय सूची

विषय पृष्ठ-संख्या

- ❖ आत्मनिवेदन i-ii
- ❖ विषय-सूची iii-vi
- ❖ रेखा-चित्र सूची vii
- ❖ भूमिका viii-ix

प्रथम अध्याय १-२३

अर्थशास्त्र की परम्परा में कौटिल्य एवं उनका अर्थशास्त्र

१.१ अर्थशास्त्र की परम्परा

१.२ आचार्य कौटिल्य

१.३ कौटिल्य नाम विषयक विवाद एवं निराकरण

१.४ कौटिल्य की रचनाएँ

१.५ अर्थशास्त्र की विषय वस्तु

१.६ अर्थशास्त्र के रचनाकार एवं रचनाकाल के सम्बन्ध में विभिन्न मत

१.७ अर्थशास्त्र पर प्राप्त टीका, संस्करण, एवं अनुवाद

१.८ अर्थशास्त्र पर आधारित अन्य महत्त्वपूर्ण कृतियाँ

१.९ अर्थशास्त्र का परवर्ती साहित्य पर प्रभाव

द्वितीय अध्याय २४-६७

आर्थिक विभाग

२.१ अक्षपटल विभाग

२.२ आकराध्यक्ष विभाग

२.२.१ खान एवं खनिज स्थान की पहचान

२.३ लक्षणाध्यक्ष विभाग

२.४ सुवर्णाध्यक्ष विभाग

२.५ कोष्ठागाराध्यक्ष विभाग
२.६ पण्याध्यक्ष विभाग
२.७ कुप्याध्यक्ष विभाग
२.८ पौतवाध्यक्ष विभाग
२.९ शुल्काध्यक्ष विभाग
२.१० सूत्राध्यक्ष विभाग
२.११ सीताध्यक्ष विभाग
२.११.१ कृषि क्षेत्र
२.११.२ बीजों का संस्कार
२.११.३ सिंचाई व्यवस्था
२.११.४ खलिहानों की व्यवस्था
२.१२ सुराध्यक्ष विभाग
२.१३ गणिकाध्यक्ष विभाग
२.१४ नावध्यक्ष विभाग
२.१५ गोऽध्यक्ष विभाग
२.१६ विवीताध्यक्ष विभाग
२.१७ मुद्राध्य विभाग समीक्षा
समीक्षा **६१-६७**

तृतीय अध्याय **६८-१०५**
राज्य की आर्थिक नीति
३.१ भू- नीति
३.२ कृषि एवं पशुपालन नीति
३.३ नगर नियोजन नीति
३.४ उद्योग नीति
३.४.१ उद्योगों का राष्ट्रीय करण
३.४.२ राज्य के विकास में बाधा उत्पन्न करने वाले तत्त्वों का निषेध
३.५ बाजार नीति
३.६ व्यापार नीति

३.६.१ फुटकर व्यापार
३.६.२ राजकीय व्यापार
३.६.३ थोक व्यापार
३.६.४ विदेशी व्यापार
३.७ बैंकिंग नीति
३.७.१ ऋण का समय
३.७.२ ऋणों की प्राथमिकता का क्रम
३.८ सामाजिक नीतियाँ
३.८.१ शिक्षा
३.८.२ चिकित्सा
३.८.३ पेयजल व्यवस्था
३.८.४ बाग-बगीचों की स्थापना
३.८.५ मनोरंजन सुविधाएं

समीक्षा ९७-१०५

चतुर्थ अध्याय १०६-१३३
अर्थशास्त्रीय आर्थिक नीति का स्त्रियों के सन्दर्भ में विश्लेषण
४.१ कर व्यवस्था
४.२ उद्योग
४.३ गणिका
४.४ प्रशासनिक क्षेत्र
४.४.१ संस्था
४.४.२ संचार
४.५ सैनिक क्षेत्र
४.६ सामाजिक क्षेत्र
४.६.१ स्त्री की परवरिश
४.६.२ तलाक एवं पुनर्विवाह का अधिकार
४.६.३ ऋण व्यवस्था का अधिकार

४.६.४ सम्पत्ति का अधिकार
४.६.५ दण्ड विधान का अधिकार
४.६.६ कठोर स्त्री के साथ व्यवहार
समीक्षा १२९-१३३

उपसंहारात्मक समीक्षा १३४-१४०
सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची १४१-१४७

रेखा चित्र-सूची

चित्र संख्या	पृष्ठ संख्या
१.१ कौटिल्य व उनके पूर्ववर्ती अर्थशास्त्रीय आचार्य	३
२.१ कौटिलीय राज्य की सप्त प्रकृतियाँ	२४
२.२ आय के प्रकार	२७
२.३ व्यय के प्रकार	२८
२.४ कौटिलीय आर्थिक विभाग	२९
२.५ सिक्कों के प्रकार	३३
२.६ सिक्कों का द्रव्यमान	३४
२.७ कौटिलीय व्यापार	४४
२.८ शराब के प्रकार	५१
२.९ सुरा के प्रकार	५२
३.१ प्रान्तीय प्रशासन का स्वरूप	७५
४.१ कौटिलीय गुप्तचर का स्वरूप	११७

भूमिका

प्राचीन भारत का इतिहास, उसकी अर्थव्यवस्था एवं सामाजिक तथा राजनीतिक व्यवस्थाओं के सम्बन्ध में बहुत से विद्वानों ने विस्तार के साथ विचार किया है। परन्तु इन्होने जिस सामग्री का प्रयोग किया है, प्रायः वह विखरी हुई प्रतीत होती है। लेकिन आचार्य कौटिल्य ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के ग्रन्थों का अध्ययन करके अर्थशास्त्र नामक ग्रन्थ की रचना की। जिसमें अर्थव्यवस्था एवं सामाजिक तथा राजनीतिक धार्मिक व्यवस्था आदि को सुव्यवस्थित एवं क्रमिक रूप से तथा वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया है।

आचार्य कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र के उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण विषयों में से मैं अर्थव्यस्था से संबन्धित ***कौटिल्य अर्थशास्त्र में वर्णित राज्य की आर्थिक नीति का विश्लेषण- स्त्रियों के विशेष संदर्भ में*** इस विषय को अपने लघु शोध-प्रबन्ध के रूप में चुना हूँ। इस विषय को लघु शोध-प्रबन्ध के रूप में चयन करने का मेरा मुख्य उद्देश्य था कि जिस प्रकार से आज स्त्रियों के अधिकारों तथा उनके सशक्तिकरण की बात की जा रही है, क्या तत्कालीन समय में स्त्रियों के अधिकारों व उनके सशक्तिकरण के विषय में आचार्य कौटिल्य ने अपने प्रशासनिक नीति, आर्थिक नीति तथा सामाजिक नीति में किस स्थान पर रखा है?

इस लघु शोध प्रबन्ध को चार अध्यायों में विभाजित किया गया है। जिसका विषय विवरण इस प्रकार से है-

प्रथम अध्याय का नाम *अर्थशास्त्र की परम्परा में कौटिल्य और उनका अर्थशास्त्र* है। सर्वप्रथम अर्थशास्त्र की परम्परा के विषय में बताया गया है, जिसमें मनु, बृहस्पति तथा उशनस (शुक्र) से लेकर कौटिल्य तक १८ अर्थशास्त्रकारों का नामोल्लेख किया गया है। तत्पश्चात् आचार्य कौटिल्य के विषय में तथा उनके नाम विषयक विवाद एवं निराकरण के विषय में बताया गया है। इसके अतिरिक्त कौटिल्य की रचनाएँ, अर्थशास्त्र का विषय वस्तु, अर्थशास्त्र के रचनाकार एवं रचनाकाल की प्रमाणिकता, अर्थशास्त्र पर प्राप्त टीका, संस्करण

एवं अनुवाद, तथा अर्थशास्त्र का परवर्ती साहित्यकारों पर प्रभाव आदि के विषय में वर्णन किया गया है।

द्वितीय अध्याय का नाम *आर्थिक विभाग* है। इस अध्याय में सर्वप्रथम कोष, सन्निधाता तथा समाहर्त्ता के विषय में वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् आर्थिक संस्थानों का विशद रूप से विवेचन किया गया है। जिन आर्थिक विभाग का विवेचन किया गया है, वे निम्नांकित हैं- अक्षपटल, आकराध्यक्ष, लक्षणाध्यक्ष, सुवर्णाध्यक्ष, कोष्ठागाराध्यक्ष, पण्याध्यक्ष, कुप्याध्यक्ष, पौतवाध्यक्ष, शुल्काध्यक्ष, सूत्राध्यक्ष, सीताध्यक्ष, सुराध्यक्ष, गणिकाध्यक्ष, नावाध्यक्ष, गौडाध्यक्ष, विवीताध्यक्ष, मुद्राध्यक्ष इत्यादि। इसके बाद समीक्षा किया गया है। इसमें आधुनिक विभाग का विवेचन किया गया है।

तृतीय अध्याय का नाम *राज्य की आर्थिक नीति* है। इस अध्याय में सर्वप्रथम आर्थिक नीति क्या है तथा आर्थिक नीति को पूर्ण करने के लिए किस प्रकार से नियोजन किया जाता है और अर्थिक नीति का उद्देश्य क्या है? इसका वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् कौटिल्य की आर्थिक नीतियों का वर्णन किया गया है। इसमें उन नीतियों पर विचार किया गया है जिसे आचार्य कौटिल्य राज्य के विकास में एक आधार मानते थे। इसके बाद में आधुनिक आर्थिक नीतियों के विषय वर्णन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय का नाम *अर्थशास्त्रीय आर्थिक नीति का स्त्रियों के सन्दर्भ में विश्लेषण* है। इसमें सर्वप्रथम कौटिल्य की आर्थिक नीतियों का स्त्रियों के सन्दर्भ में विश्लेषण किया गया है तत्पश्चात् आधुनिक आर्थिक नीतियों में स्त्रियों का विश्लेषण किया गया है।

अन्त में उपसंहारात्मक समीक्षा किया गया है। इसमें उपर्युक्त सभी अध्यायों का वर्तमान के साथ उपसंहारात्मक विवेचन किया गया है।

प्रथम अध्याय :

अर्थशास्त्र की परम्परा में कौटिल्य एवं उनका अर्थशास्त्र

१.१ अर्थशास्त्र की परम्परा

अर्थशास्त्र एक महत्त्वपूर्ण शास्त्र के रूप में परिगणित है । अर्थशास्त्र विषयक ग्रंथों का निर्माण कल्पसूत्रों (७०० ई०पूर्व०) तथा विशेष रूप से बौधायन सूत्र (५०० ई० पू०) से शुरू हो गया था । परन्तु बौद्ध के जातक ग्रंथों में, लगभग ६०० ईसा पूर्व से अर्थशास्त्र की गणना एक प्रमुख शास्त्र के रूप में होने लगी थी। आश्वालायन गृह्यसूत्र में आदित्य नामक एक आचार्य का उल्लेख मिलता है । जिन्होने ने अर्थशास्त्र पर एक ग्रन्थ लिखा।[1]

प्रारम्भ में धर्म, अर्थ और काम इस त्रिवर्ग शास्त्र पर एक ही साथ विचार किया गया । महाभारत के शान्ति पर्व से यह विदित होता है कि इस त्रिवर्ग शास्त्र के रचयिता ब्रह्मा थे और तत्पश्चात् भगवान् शंकर ने ब्रह्मा द्वारा रचित उस बृहत् शास्त्र धर्म, अर्थ तथा कामात्मक शास्त्र का संक्षेप किया जिसका नाम वैशालाक्ष पड़ा ।[2] इसके अतिरिक्त पुराणों में भी अर्थशास्त्र का वर्णन मिलता है । विष्णु पुराण के अनुसार अर्थशास्त्र अथर्ववेद के एक उपवेद के रूप में निरूपित किया गया है-

आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चैव ते त्रयः ।

अर्थशास्त्रं चतुर्थं तु विद्या दृष्टा दशैव ताः ॥[3]

अर्थात् आयुर्वेद, धनुर्वेद, और गान्धर्ववेद इन तीनों को तथा चौथे को मिला लेने से कुल १८ विद्यायें हो जाती हैं।

आचार्य कौटिल्य से पूर्व अनेक अर्थशास्त्र के मर्मज्ञ आचार्य एवं उनकी कृतियाँ उपलब्ध थी । जिसका अध्ययन करके आचार्य कौटिल्य ने अर्थशास्त्र की रचना की थी । परन्तु पूर्ववर्ती

---

[1] डॉ० मधुसूदन त्रिपाठी, कौटिल्य *का आर्थिक चिन्तन* पृ. सं. ४ । तथा चाणक्य : *हिन्दी भास्कर कोष,* वीकिपीडिया ।

[2] देवकान्ता शर्मा, कौटिल्य *के प्रशासनिक विचार,* पृ. सं., ३८ ।

[3] मुनिलाल गुप्त, *विष्णु पुराण (गोरखपुर गीताप्रेस),* अध्याय षष्टम्, श्लोक-२४.

आचार्यों का समग्र सिद्धान्त तथा उनकी कृतियाँ आज अनुपलब्ध हैं, लेकिन कौटिल्य ने अपने ग्रन्थ अर्थशास्त्र में अपने पूर्ववर्ती आचार्यों का नामोल्लेख किया है । इनके मतों का उल्लेख करते हुए '*नेति कौटिल्यः*' कहकर कई स्थानों पर अपना मत स्थापित किया है । आचार्य कौटिल्य अधोलिखित आचार्यों का नाम्ना उल्लेख किया है-

मनु[4], बृहस्पति[5], उशनस (शुक्र)[6], भारद्वाज[7], विशालाक्ष[8], पराशर[9], पिशुन[10], कोणपदन्त[11], बातव्याधि[12], बाहुदन्ती पुत्र[13] ।

परन्तु डॉ. मधुसूदन त्रिपाठी ने अपने शोध-प्रबन्ध *'कौटिल्य का आर्थिक चिन्तन'* में उपर्युक्त आचार्यों के अतिरिक्त कुछ अन्य आचार्यों का नाम गिनाया है जो कौटिल्य से पूर्व हैं, जिनका नाम अधोलिखित है-

कात्यायन, कार्णिका भारद्वाज, चारायण, घोटुमुख, किंजल्क, पिशुनपुत्र, आम्भीयस, अज्ञात अर्थशास्त्रकार ।[14]

इस प्रकार आचार्य मनु से कौटिल्य तक अर्थशास्त्रकारों की संख्या १९ प्राप्त होती है । कुछ विद्वान् कौटिल्य सहित अर्थशास्त्रों की संख्या १८ मानते हैं । वे भरद्वाज को ही कर्णिका भरद्वाज स्वीकार करते हैं ।[15]

---

[4] अर्थशास्त्र, *प्रकरणाधिकरण विभाजन,* १ पृ.सं. १ । ३/६७/११ पृ.सं. ३०४ ।

[5] वही.

[6] वही. ३/६७/११ पृ.सं. ३०३ ।

[7] वही. १/३/७, पृ.सं., २० । १/१२/१६, पृ.सं., ५३ । ८/१२९/३, पृ.सं., ५६६ ।

[8] वही. १/३/७, पृ.सं., २० । १/१२/१६, पृ.सं., ५३ ।

[9] वही.

[10] वही.

[11] वही.

[12] वही.

[13] वही.

[14] कौटिल्य *का आर्थिक चिन्तन,* पृ.सं., ५.

[15] देवकान्ता शर्मा, कौटिल्य *के प्रशासनिक विचार,* पृ. सं., ५ ।

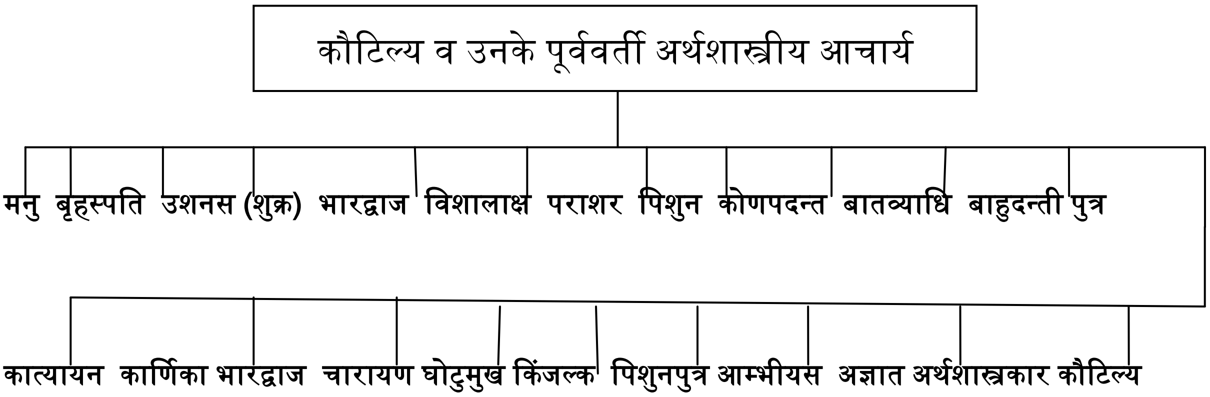

रेखा चित्र संख्या:१.१

अब प्रश्न है कि **अर्थशास्त्र** क्या है? जिसके विषय में सर्वप्रथम आचार्य कौटिल्य ने बताया कि मनुष्य द्वारा बसी हुई भूमि तथा उसकी उत्पत्ति एवं पालन करने वाला शास्त्र अर्थशास्त्र कहलाता है-

मनुष्याणां वृत्यर्थः, मनुष्यवती भूमिरित्यर्थः, तस्याः पृथिव्या लाभपालनोपायः शास्त्रमर्थशास्त्रमिति ।[16]

१.२ आचार्य कौटिल्य -

कौटिल्य का महाव्यक्तित्व जहाँ एक ओर राजनीतिज्ञ के रूप में मौर्य साम्राज्य के साथ भारतीय इतिहास में अपनीं कीर्ति-कथा को अमर बनाये हुए है, और वहीं दूसरी ओर अपनी अद्‌भुत अतुलनीय कृति के कारण अर्थशास्त्र के विषय में गौरवान्वित है। प्राचीन विद्वानों के समान कौटिल्य के विषय में भी मतभेद उत्पन्न होता है, क्योंकि इन्होंने अपने विषय में विशेष प्रकाश नहीं डाला है । पुरातन रचना शैली के अधार पर अर्थशास्त्र में स्थान-स्थान पर उनके नाम का ही उल्लेख मिलता है तथा इनकी असाधारण स्तुतियों के कारण पुराणों से लेकर काव्य, नाटक तथा कोष ग्रन्थों में भी, तथा बौद्ध, जैन, सांख्य दर्शनों में उनके माहात्म्य की कथायें व्याप्त हैं। कौटिल्य द्वारा नन्दवंश का विनाश तथा मौर्यवंश की प्रतिष्ठा के सम्बन्ध में विष्णुपुराण में उल्लेख मिलता है कि "महाभदन्त तथा उसके ९ पुत्र १०० वर्ष तक राज्य करेंगे। अन्त में कौटिल्य नामक एक ब्राह्मण उस राज्य परम्परा के अन्तिम उत्तराधिकारी

[16] वाचस्पति गैरोला, *कौटिल्य अर्थशास्त्र,* १५/१८०/१, पृ.सं. ७६५.

नन्दवंश का सम्पूर्ण विनाश करेगा। नन्दवंश के स्थान पर मौर्य के प्रथम शासक चन्द्रगुप्त मौर्य का कौटिल्य राज्याभिषेक करेंगे। उसका पुत्र बिन्दुसार तथा बिन्दुसार का पुत्र अशोक होगा-

"महापद्म तत्पुत्राश्चैकं वर्षतमवनीपतयो भविष्यन्ति । ततश्च नवैव तान्नन्दान् कौटिल्यो ब्राह्मण: समुद्धरिष्यति । तेषामभावे मौर्याश्च पृथ्वीं भोक्ष्यन्ति । कौटिल्य एव चन्द्रगुप्तमुत्पन्नं राज्येऽभिषेक्ष्यति । तस्यापि पुत्रो बिन्दुसारो भविष्यति तस्याशोकवर्धन:"[17]

इस पुराणोक्त विवरण से दो बातों का पता चलता है कि प्रथम मगध राज्य पर नन्दवंश का शासन था, द्वितीय इसके बाद कौटिल्य ने अपने तीक्ष्ण बुद्धिबल से मौर्यवंश प्रतिष्ठापित किया।

कौटिल्य के जन्म-स्थान और जन्मकाल के सम्बन्ध में इतिहास मौन है, किन्तु इस बात का प्रमाण मिलता है कि उनकी शिक्षा तक्षशिला विश्वविद्यालय में सम्पन्न हुई थी। चन्द्रगुप्त तथा चाणक्य का काल एक ही है। जिसका प्रमाण हमें उपरोक्त विष्णु पुराण में प्राप्त कथा के आधार पर मिलता है। अत: यह कहा जा सकता है कि चाणक्य का जन्म लगभग ३८५ ई.पू. में हुआ था । कुछ विद्वानों का मत है कि कौटिल्य का जन्म ४०० ई.पू. में हुआ था । उनके पिता का नाम चणक अथवा शिवगुप्त था ।[18] पिता के अतिरिक्त माता आदि अन्य वंशजों की जानकारी इतिहास में अज्ञात है । कौटिल्य आजीवन ब्रह्मचारी थे, सुकरात की भाँति उन्होंने अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ली थी, तथा सर्दी, गर्मी, वर्षा, भूख आदि पर उन्हें पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त था। कौटिल्य के जन्मकाल के विषय में यही कहा जा सकता है कि वे सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य एवं उनके पूर्वज नन्द के समकालीन थे।[19] एक बात जो सारे भारतीय साहित्य में एक स्वर में मिलती है वह यह है कि कौटिल्य चन्द्रगुप्त का समकालीन थे तथा उनके मन्त्री थे।

कौटिल्य का **जन्म-स्थान** भी विवादास्पद है । कुछ विद्वान् उनका जन्म-स्थान गान्धार क्षेत्र स्थित तक्षशिला तथा कुछ लोग मगध अर्थात् बिहार मानते हैं । ऐसा भी हो सकता है कि कौटिल्य पाटलिपुत्र का निवासी होते हुए भी तक्षशिला अध्ययन करने गये हों, जो उस समय विद्या एवं चिकित्सा शास्त्र का केन्द्र था । बौद्ध, जैन साहित्य के अनुसार कौटिल्य तक्षशिला के निवासी थे । तक्षशिला बौद्धदर्शन का केन्द्र था । कौटिल्य ने अनेक वनस्पतियों एवं धातुओं

---

17 वि.पु, चतुर्थ अंश, अध्याय-२४, श्लोक सं. २५-३०.

18 विशाखदत्त, मुद्राराक्षस, प्रस्तावना (वाराणसी- चौ.सं. सिरीज-१९६१)

19 देवकान्ता शर्मा, कौटिल्य के प्रशासनिक विचार- कौटिल्य की जीवनी एवं अर्थशास्त्र, पृ.सं.,२०.

का उल्लेख किया जो गान्धार में था । उस क्षेत्र के सम्बन्ध में उन्होंने साधिकार लिखा है, जिसका कारण यह है उनका सम्बन्ध उस प्रदेश से था तथा वहाँ अध्ययन किया था।[20]

अनेक दक्षिणात्य लेखकों का मत है कि कौटिल्य दक्षिण के ब्राह्मण थे और अर्थशास्त्र दक्षिण की ही रचना है। दक्षिणापत्य लेखकों का मत है अर्थशास्त्र की कोई पाण्डुलिपि उत्तर भारत में नहीं मिली है।अर्थशास्त्र दक्षिण की ही रचना है, परन्तु यह ज्ञात है कि चन्द्रगुप्त मौर्य अपने जीवन के अन्तिम चरण में २९९ ई.पू. में दक्षिण (कर्नाटक, श्रवणवेल गोला) गये थे, वहीं उनकी मृत्यु हो गयी। कौटिल्य के सम्मुख सम्पूर्ण भारतवर्ष एक इकाई के रूप में परिणत हो चुका था। अत: उन्होंने भी चन्द्रगुप्त के साथ दक्षिण में चले गये होंगे तथा वहीं अर्थशास्त्र की रचना की होगी । इससे स्पष्ट होता है कि कौटिल्य उत्तर-पश्चिम के ही विद्वान् थे।[21]

१.३ कौटिल्य नाम विषयक विवाद एवं निराकरण-

आचार्य कौटिल्य की ख्याति चाणक्य, विष्णुगुप्त आदि अनेक नामों से है । हेमचन्द्र कोश में कौटिल्य को चणकात्मज कहा गया है-[22]

अर्थात् चणक के पुत्र होने के कारण चाणक्य कहा गया, और कौटिल्य उन्हें कुटिल राजनीतिज्ञ होने के कारण कहा जाता है।

महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री का मत है कि कोटल ऋषि द्वारा संस्थापित "कौटल गोत्र" में जन्म लेने के कारण विष्णुगुप्त को कोटल्य कहा जाता है कौटिल्य नहीं । कौटिल्य नाम लेखकों की त्रुटि के कारण मिलता है । यह तो ज्ञात है कि चाणक्य व कौटिल्य नाम पितृ प्रदत्त न होकर वंश नाम या उपाधि नाम है । इनका वास्तविक पितृ प्रदत्त नाम विष्णु गुप्त था।[23]

आचार्य चाणक्य ने अपने नाम के सम्बन्ध में लिखा है- कूटो घट: तं धान्यपूर्णं लान्ति संगृह्णान्ति इति कुटला: कुम्भीधान्या: त्यागपरा ब्रह्मण श्रेष्ठा: तेषां गोत्रापत्यं कोटिल्यो विष्णुगुप्तो नाम।[24]

---

[20] वही. पृ.सं., २०.

[21] वही. पृ.सं., २०-२१.

[22] कौटिल्यश्चणकात्मज:। हेमचन्द्रकौश

[23] *कौटिल्य के प्रशासनिक विचार,* पृ.सं., २२.

[24] रामावतार विद्याभास्कर, *चाणक्य सूत्र संग्रह,* पृ.सं.२४३ .

अर्थात् कूट घट का नाम है, जो लोग एक घट से अधिक अन्न संग्रह नहीं करते थे, जो कुम्भीधान्य नामक अत्यन्त त्यागी श्रेष्ठ ब्राह्मणों का गोत्र कोटल्य कहलाता था। कौटिल्य का मुख्य नाम विष्णुगुप्त है। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र के अन्त में लिखा है-

दृष्ट्वा विप्रतिपत्तिं बहुधा शास्त्रेषु भाष्यकाराणाम्।

स्वमेव विष्णुगुप्तश्चकार सूत्रं भाष्यम्। [25]

अर्थात् प्राचीन अर्थशास्त्रों में बहुधा भाष्यकारों को देखकर स्वयं ही विष्णुगुप्त ने इस अर्थशास्त्र को सूत्रों और उनके भाष्य का निर्माण किया है।

४०० ई. में आचार्य कामंदक के नीतिसार में कौटिल्य का नाम विष्णु गुप्त मिलता है। नीतिसार के आरम्भिक अंश में हमें चार बातों की जानकारी प्राप्त होती है। प्रथम बात कि कौटिल्य ने अर्थशास्त्र की रचना की, द्वितीय की कामन्दक के नीति ग्रन्थ का आधार वही अर्थशास्त्र था, तृतीय कौटिल्य ने नन्दवंश का उन्मूलन कर मौर्यवंश को स्थापित किया और अन्तिम चतुर्थ कौटिल्य का असली नाम विष्णु गुप्त था। नीतिसार का सारांश इस प्रकार है- नीतिसार उस विद्वान् के ग्रन्थ का आधार है, जिसके वज्र ने पर्वत की तरह अविचल, अडिग नन्दवंश को उखाड़ फेका था, जिसने चन्द्रगुप्त को पृथ्वी का स्वामित्व दिया और जिसने अर्थशास्त्र रूपी महार्णव से नीतिशास्त्र रूपी नवनीत का दोहन किया, ऐसे उस महामति विष्णु गुप्त नामक विद्वान् को नमस्कार है-

नीतिशास्त्रामृतं धीमानर्थशास्त्र महोदधे।

समुद्रधे नमस्तस्मै विष्णुगुप्ताय वेधसे॥[26]

नीतिसार के अतिरिक्त अन्य संस्कृत ग्रन्थ हेमचन्द्र- अभिधान चिन्तामणि, यादवप्रकाश – वैजयन्ती, भोजराज-नाममल्लिका तथा कोश आदि में आचार्य कौटिल्य के विष्णुगुप्त सहित प्रचलित नाम हैं। यथा-

१. हेमचन्द्र- अभिधान चिन्तामणि में-

विष्णुगुप्त कौटिल्यश्चाणक्यो द्रामिलो गुलः। वात्स्यायनो मल्लनागः पाक्षिलस्वामिनावपि॥

---

[25] कौटिल्य अर्थशास्त्र, अधिकरण-१५, प्रकरण-१८०, अध्याय-१

[26] कामन्दकीय-नीतिसार, आरम्भिक अंश

वात्स्यायनो मल्लनागः कौटिल्यश्चणकात्मजः । द्रामिलः पाक्षिलः स्वामी विष्णुगुप्तो गुलश्च स॥

२. यादवप्रकाश-वैजयन्ती में-

वात्स्यायनस्तु कोटिल्यो विष्णुगुप्तो वराणकः । द्रामिल पाक्षिल स्वामी मल्लनागो वलोऽपि च॥

३. भोजराज- नाममल्लिका–

कात्यायनो वररुचिर्मयजिच्य पुनर्वसुः । कात्यायनस्तुकौटिल्यो विष्णुगुप्तोवराणकः ॥

द्रामिल पाक्षिल स्वामी मल्लनागो वलोऽपि च ।

इस प्रकार मल्लनाग, द्रमिल, वराणक, पक्षिलस्वामी, आदि कौटिल्य के अन्य नामों की चर्चा वाचस्पति गैरोला ने की है-[27]

ये नाम प्राचीन और मध्यकालीन सभी ग्रन्थों में मिलते हैं। अन्य अर्थशास्त्रकारों जैसे- भीष्म, ऊद्धव, नारद आदि को भी उनके वास्तविक नामों के अतिरिक्त क्रमश: अन्य नामों से जैसे- कणोपदन्त, वातव्याधि, पिशुन आदि से भी जाना जाता है ।[28]

इस प्रकार आज भी भारतीय परिवारों में एक व्यक्ति के तीन नाम होना अत्यन्त साधारण बात है। एक राशि का, दूसरा कुल का, तीसरा प्रचलित नाम । सम्भवतः यही बात कौटिल्य के साथ भी रहा होगा ।

इस तरह विभिन्न कोश-ग्रन्थों की इस नामावली की उपलब्धि से आचार्य कौटिल्य के वास्तविक नाम और उनके लिये प्रयुक्त होने वाले दूसरे नामों का अपने आप ही निराकरण हो जाता है । वस्तुत: वर्तमान में विद्वत्समाज में कौटिल्य और सामान्य जगत् में चाणक्य नाम सर्वाधिक लोकप्रिय और प्रचलित है।

---

[27] वाचसपति गैरोला, *अर्थशास्त्र, भूमिका,* पृ.सं. ६६

[28] *कौटिल्य का आर्थिक चिन्तन, पृ.सं., २.*

१.४ कौटिल्य की रचनाएँ

विष्णु गुप्त द्वारा लिखित निम्नलिखित ग्रन्थ प्राप्त होते हैं, जो भारत की एकता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये ग्रन्थ निम्नलिखित हैं[29]-

१- अर्थशास्त्र

२- लघु चाणक्य

३- बृद्ध चाणक्य

४- चाणक्य नीतिशास्त्र

५- चाणक्य सूत्र

चाणक्य की उपर्युक्त कृतियों में अर्थशास्त्र एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। जो राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा विधिक आदि दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

१.५ अर्थशास्त्र का विषय वस्तु

अर्थशास्त्र में १५ अधिकरण, १५० अध्याय, १८० प्रकरण, ३८० कारिकाएँ (श्लोक) हैं । यदि सारे वर्णों को एकत्रित करके ३२ अक्षरों के अनुष्टुप् श्लोक बना दिया जाय तो ६००० हजार श्लोक बनेंगे-

शास्त्रमुद्देशः पञ्चदशाधिकरणानि, संपञ्चाशदध्यायशतं साशीतिप्रकरणशतं षट् श्लोक सहस्त्राणि इति।[30]

अर्थशास्त्र का मुख्य विषय– वस्तु राजनीतिशास्त्र व प्रशासनिक व्यवस्था है । जिसका वर्णन करते समय आचार्य कौटिल्य ने प्रसंगतः अर्थशास्त्र, दर्शनशास्त्र, नीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, शिक्षा, सैन्यशास्त्र, यौनविद्या, भूगर्भविद्या, रसायनशास्त्र, अभियान्त्रिक विद्या आदि अनेक विषयों पर प्रकाश डाला है । इसकी विषय वस्तु इस प्रकार है-

---

[29] देवकान्ता शर्मा, *कौटिल्य के प्रशासनिक विचार*, पृ.सं. ३७.

[30] वाचस्पति गैरोला, कौटिल्य अर्थशास्त्रम्, प्रथम अधिकरण

प्रथम अधिकरण- विनयाधिकरण

इसमें राजवृत्ति का निरूपण किया गया है अर्थात् राजा के के जीवन और व्यवहार का सामान्य वर्णन किया गया है । इसके अतिरिक्त विद्या विषयक विचार, आमात्यों की नियुक्ति, मंत्री और पुरोहित की नियुक्ति, गुप्तचरों व राजदूतों की नियुक्ति, अपने देश में कृत्य व अकृत्य पक्ष की सुरक्षा तथा शत्रु देश के कृत्य व अकृत्य पक्ष को मिलाना, राजकुमार की रक्षा, राजभवन का निर्माण और आत्मरक्षा का प्रबन्ध आदि का वर्णन किया गया है ।[31]

दूसरा अधिकरण- अध्यक्ष प्रचार

इसमें राज्य के विभिन्न प्रशासकीय अध्यक्षों के विभागों और कर्तव्यों का वर्णन किया गया है । इसमें कोष्ठागाराध्यक्ष, पण्याध्यक्ष, कुप्याध्यक्ष, आयुधागाराध्यक्ष, पौतवाध्यक्ष, शुल्काध्यक्ष, सूत्राध्यक्ष, लक्षणाध्यक्ष, सीताध्यक्ष, सूराध्यक्ष, सूनाध्यक्ष, गणिकाध्यक्ष, अकराध्यक्ष, लक्षणाध्यक्ष, विविताध्यक्ष, मुद्राध्यक्ष, नवाध्यक्ष, पत्तनाध्यक्ष, देवताध्यक्ष, मानाध्यक्ष, गोअध्यक्ष, अश्वाध्यक्ष, हस्त्याध्यक्ष, रथाध्यक्ष व पत्त्याध्यक्ष, सुवर्णाध्यक्ष, अक्षपटलाध्यक्ष, इत्यादि अध्यक्ष विभागों का वर्णन किया गया है । इसके अतिरिक्त जनपदों व दुर्गों का निर्माण, सन्निधाता (कौषाध्यक्ष), समाहर्त्ता (कर वसूली करने वाला) तथा नागरिक के कर्तव्यों आदि का वर्णन किया गया है ।[32]

तीसरा अधिकरण- धर्मस्थीय

इस अधिकरण में व्यवहार की स्थापना, विवादों पर विचार, विवाह-सम्बन्धी विचार, वास्तुक- गृह निर्माण, रास्ता रोकना तथा सीमा विवाद आदि का वर्णन, ऋण लेना, धरोहर सम्बन्धी नियम, दास और श्रमिकों के नियम, मजदूरी व हिस्सेदारी के नियाम, क्रय-विक्रय

---

31 अर्थशास्त्र, प्रथम अधिकरण, पृ. सं., ८-६९ ।

32 अर्थशास्त्र, पृ. सं. ७७-२५०.

सम्बन्धी वर्णन, अस्वामी विक्रय, स्व-स्वामि-सम्बन्ध, साहस, वाक्पारूष्य, दण्डपारूष्य तथा द्यूत समाह्वय और प्रकीर्णक आदि का वर्णन किया गया है ।[33]

चौथा अधिकरण- कण्टक - शोधन

इसमें समाज के मार्ग में बाधा उतपन्न करने वालों के लिए दण्ड विधान की व्यवस्था है । जैसे- शिल्पियों व व्यापारियों से प्रजा की रक्षा, दैवी आपत्तियों का प्रतिकार, गुप्त षड़यन्त्रकारियों से प्रजा की रक्षा, सिद्धवेष धारी गुप्तचरों द्वारा दुष्टों का दमन, आशुमृतक परीक्षा, सभी राजकीय विभागों की परीक्षा, एकांग वध या उसकी जगह द्रव्य दण्ड, शुद्ध दण्ड या चित्र दण्ड, कुवांरी कन्या से सम्भोग करने का दण्ड तथा अतिचार का दण्ड आदि का वर्णन किया गया है ।[34]

पाचवाँ अधिकरण- योग वृत्त

इसके अन्तर्गत राज्य के कर्मचारियों के कर्तव्यों का उल्लेख और अराजक भक्तों को दण्ड देने के नियम का विवेचन किया गया है । जैसे- उच्चाधिकारियों के सम्बन्ध में दण्ड व्यवस्था, कोष का संग्रह, भृत्यों का भरण पोषण, राज्य कर्मचारियों का व्यहार, व्यवस्था का यथोचित पालन, राज्य का प्रतिसंधान एवं एकैश्वर, आदि का वर्णन किया गया है ।[35]

छठा अधिकरण- मण्डल-योनि

मण्डलयोनि में प्रकृतियों के गुण और शान्ति तथा उद्योग आदि का वर्णन किया गया है ।[36]

सातवाँ अधिकरण- षाड्गुण्य

इस षाड्गुण्य में शत्रु राष्ट्रों को वश में करने का उपाय किया गया है ।[37]

---

[33] अर्थशास्त्र, पृ. सं. २५५-३४२.

[34] वही.,पृ.सं., ३४५-४०२ .

[35] अर्थशास्त्र, पृ. सं., ४०५-४३७.

[36] वही., पृ.सं., ४४१-४४९.

[37] वही., पृ.सं., ४५३-५५०.

आठवाँ अधिकरण- व्यसनाधिकारिक (व्यसनों का निरूपण)

इसमें राज्य की विपत्तियों के मूल कारण तथा उन्हें दूर करने के उपाय बताये गये हैं। जैसे- प्रकृतियों का व्यसन, राजा, राज्य तथा सामान्य पुरुषों के व्यसनों का विचार, पीडन वर्ग, स्तम्भ वर्ग, कोष सङ्गवर्ग, सेना-व्यसन और मित्र-व्यसन आदि का वर्णन किया गया है।[38]

नौवाँ अधिकरण- अभियास्यत्कर्म (आक्रमण का निरूपण)

इसके अन्तर्गत विजय के लिए प्रस्थान करने से पूर्व विचारणीय विषयों पर विचार किया गया है। जैसे- शक्ति, देश और काल के बलाबल का ज्ञान, आक्रमण का समय, सेनाओं के तैयार होने का समय सैन्य संगठन, शत्रु सेना से मुकाबला, बाह्य तथा आभ्यन्तर प्रकृति के कोप का प्रतिकार, क्षय, व्यय और लाभ का विचार वाह्य और आभ्यन्तर आपत्तियाँ, राजद्रोही और शत्रुजन्य आपत्तियाँ, अर्थ-अनर्थ तथा संशय सम्बन्धी आपत्तियाँ तथा उन आपत्तियों के प्रतिकारों से होने वाली सिद्धियाँ आदि का वर्णन किया गया है।[39]

दशवाँ अधिकरण- साङ्ग्रामिक (सङ्ग्राम का निरूपण)

इसमें विजय के लिए युद्ध सम्बन्धी नियम हैं। जैसे- छावनी क निर्माण तथा प्रयाण, आपत्ति एवं आक्रमण के समय की रक्षा, कूट युद्ध के भेद- अपनी सेना को प्रोत्साहन और अपनी तथा दूसरी सेना का प्रयोग, युद्ध योग्य भूमि और पदाति, अश्व, रथ, तथा हाथी आदि सेनाओं के कार्य, पक्ष, कक्ष तथा उदस्थ आदि विशेष ब्यूहों के सेना का परिणाम के अनुसार व्यूह विभाग, सार तथा फल्गु बलों का विभाग, चतुरंग सेना का युद्ध, प्रकृति व्यूह, विकृति व्यूह और प्रति व्यूह आदि का वर्णन किया गया है।[40]

---

38 वही., पृ.सं., ५५५-५८६.

39 *अर्थशास्त्र,* पृ. सं., ५८९-६३३.

40 वही., पृ.सं., ६३७-६६६.

ग्यारहवाँ अधिकरण- वृत्त संघ

इसमें संघ और राज्यों में फूट डालने की विधियों का वर्णन है। जैसे- भेदक प्रयोग और उपांशु दण्ड का वर्णन किया गया है।[41]

बारहवाँ अधिकरण- आबलीयस

इसमें निर्बल राजाओं के प्रतिबल राजाओं के प्रतिकार के उपाय बताये गये हैं। जैसे- दूत कर्म, मन्त्र युद्ध, सेनापतियों का वध तथा राजमण्डल की सहायता, शस्त्र, अग्नि, तथा रसों का गूढ़ प्रयोग और वीवध, असार तथा प्रसार का नाश, कपट उपायों तथा दण्ड प्रयोगों द्वारा और आक्रमण के द्वारा विजयोपलब्धि का वर्णन किया गया है।[42]

तेरहवाँ अधिकरण- दुर्गलम्भोपाय (दुर्ग प्राप्ति का निरूपण)

इसके अन्तर्गत शत्रु के दुर्गों पर विजय करने के उपायों का विवेचन किया गया है। जैसे- उपजाप, कपटों के द्वारा राजा को लुभाना, गुप्तचरों का शत्रु देश में निवास, शत्रु के दुर्ग को घेरकर अपने अधिकार में करना, तथा विजित देश में शन्ति स्थापित करना आदि का वर्णन किया गया है।[43]

चैदहवाँ अधिकरण- औपनिषदिक

इस अधिकरण के अन्तर्गत शत्रु पर विष, टोना आदि की प्रयोग की विधि पर प्रकाश डाला गया है। जैसे- शत्रु वध के प्रयोग, प्रलम्भन योग तथा शत्रु द्वारा अपनी सेना पर किये गये घातक प्रयोगों का प्रतिकार आदि का वर्णन किया गया है।[44]

पन्द्रहवाँ अधिकरण- तन्त्रयुक्ति का निरूपण

---

[41] वही., पृ.सं., ६६९-६७५.

[42] वही., पृ.सं., ६७९-७०१.

[43] *अर्थशास्त्र,* पृ. सं. ७०५-७३४ .

[44] वही., पृ.सं., ७३७-७६२ .

इसमें अर्थशास्त्र की सामान्य विवेचना की गयी है यानि अर्थशास्त्र की युक्तियाँ दी गयी है ।[45]

कौटिल्य अर्थशास्त्र की उपर्युक्त विषय वस्तु का अवलोकन करने के पश्चात् कहा जाता है कि-

सुखग्रहणविज्ञेयं तत्वार्थपदनिश्चितम् ।

कौटिल्येन कृतं शास्त्रं विमुक्तग्रथविस्तरम् ॥[46]

अर्थात् कौटिल्य अर्थशास्त्र में तत्त्वार्थ एवं पदों का प्रयोग किया है, व्यर्थ विस्तार से यह ग्रन्थ सर्वथा मुक्त है ।

१.६ अर्थशास्त्र के रचनाकार एवं रचनाकाल के सम्बन्ध में विभिन्न मत-

अर्थशास्त्र के प्रणेता कौटिल्य के विषय में जितना विवाद रहा, उससे कहीं अधिक विवाद यह भी है कि क्या अर्थशास्त्र कौटिल्य की रचना है? तथा कौटिल्य अर्थशास्त्र का समय क्या है? इन दोनों प्रश्नों का समाधान हमें कौटिल्य अर्थशास्त्र पढ़ने से प्राप्त हो जाता है तथा जो कुछ अज्ञात रह जाता है, वह पुराणों तथा तत्कालीन भारतीय ग्रन्थों एवं अर्थशास्त्रकारों द्वारा विरचित ग्रन्थों के अध्ययन से ज्ञात हो जाता है।

अर्थशास्त्र के अन्त में पन्द्रहवें अधिकरण तन्त्रयुक्ति में समाप्ति सूचक एक श्लोक आता है जिससे ज्ञात होता है कि अर्थशास्त्र की रचना कौटिल्य ने ही की है । वह श्लोक इस प्रकार है-

येन शास्त्रं च शस्त्रं च नन्दराजगता च भू:।

अमर्षेणोद्धृतान्याशु तेन शास्त्रमिदं कृतम्॥[47]

अर्थात् जिसने बड़े अमर्ष के साथ शास्त्र, शस्त्र और नन्दराज के हाथ में गयी हुई पृथ्वी का उद्धार किया उसने(विष्णुगुप्त ने) ही इस शास्त्र की रचना की। अर्थशास्त्र के रचयिता के प्रसंग अन्यत्र भी प्राप्त होते हैं। एक स्थान पर लिखा है कि-"सम्पूर्ण शास्त्रों का विधिवत् अध्ययन करके और प्रयोग करके कौटिल्य ने नरेन्द्र के लिये शासन विधि बनायी है-

सर्वशास्त्राण्यनुक्रम्य प्रयोगमुपलभ्य च।
कौटिल्येन नरेन्द्रार्थे शासनस्य विधि: कृत:॥[48]

---

[45] वही., पृ.सं. ७६५-७७१.

[46] वही., प्रकराधिकरण विभाजन, पृ.सं., ७.

[47] अर्थशास्त्र, १५/१८०/१, पृ.सं. ७७१.

[48] अर्थशास्त्र, २/२६,१० पृ.सं., १२४.

दूसरे स्थान पर पुन: लिखा है कि कौटिल्य ने यह शास्त्र ऐसा बनाया है, जिसे सुगमता से और सुख पूर्वक समझा और ग्रहण किया जा सकता है। इसमें व्यर्थ ग्रन्थ का विस्तार नहीं किया गया है, और इसके तत्त्व अर्थ और पद सुनिश्चित हैं-

सुखग्रहणविज्ञेयं तत्वार्थपदनिश्चितम्।
कौटिल्येन कृतं शास्त्रं विमुक्तग्रन्थविस्तरम्॥[49]

इसके अतिरिक्त कौटिल्य ने सम्पूर्ण अर्थशास्त्र में कई स्थानों पर पूर्व आचार्यों का मत प्रस्तुत करके अपना मत प्रस्तुत किया है 'नेति कौटिल्य:'[50] कहकर । इसके अतिरिक्त कामन्दकीय नीतिसार से भी ज्ञात होता है कि अर्थशास्त्र के प्रणेता कौटिल्य हैं। यह पहले बताया जा चुका है।

'दशकुमार चरितम्' में आचार्य दण्डी ने उल्लेख किया है कि विष्णु गुप्त के प्रशासन में मौर्य शासकों के हित के लिये ६००० श्लोकों का निबन्ध प्रस्तुत किया गया है-[51]

वाणभट्ट ने कौटिल्य रचित अर्थशास्त्र को राजनय विज्ञान बताया है।[52] पञ्चतन्त्र के ग्रन्थकार विष्णुशर्मा ने भी अर्थशास्त्र के रचयिता कौटिल्य (चाणक्य) नामक ब्राह्मण को बताया है।[53]

वस्तुत: अन्त: साक्ष्य तथा अन्य ग्रन्थों के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि अर्थशास्त्र के रचयिता कौटिल्य ही हैं। हालाँकि कुछ समय पहले अर्थशास्त्र और कौटिल्य के सम्बन्ध में विवाद उत्पन्न हो गया था। परन्तु डॉ. शामशास्त्री एवं गणपति शास्त्री आदि विद्वानों के निष्कर्षों तथा आधुनिक खोजों के आधार पर यह पूर्णत: सिद्ध हो गया है कि कौटिल्य ही अर्थशास्त्र के कर्ता थे।

यह निस्सन्देह रूप से स्पष्ट हो गया है कि अर्थशास्त्र कौटिल्य की रचना है। परन्तु अर्थशास्त्र के रचना काल एवं कौटिल्य के जीवनकाल के सम्बन्ध में गत अनेक वर्षों से भारतीय एवं विदेशी विद्वानों में तर्क वितर्क चल रहा है। अर्थशास्त्र की रचनाकाल के सम्बन्ध में दो मत प्रचलित हैं-

---

49 *अर्थशास्त्र,* प्रकरणाधिकरण विभाजन, पृ.सं. ७.

50 *अर्थशास्त्र,* १/१/३, ७/११५/९-११.

51 दण्डी, दशकुमारचरितम्, उच्छवास-८

52 बाणभट्ट, कादम्बरी

53 विष्णुशर्मा,पञ्चतन्त्रम्, कथामुखम्, पृष्ठ-१,२.

प्रथम मत के अनुसार यह मौर्यकालीन कृति है। संभवत: ईसा. पूर्व ३२१ के मध्य इस ग्रन्थ की रचना की गयी थी। 'दि कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया' ने भी अर्थशास्त्र का रचनाकाल ३००ई. पू. निर्धारित किया है। इस मत के मुख्य समर्थक हैं – शामशास्त्री, गणपतिशास्त्री, के.पी.जयसवाल, एन.सी.बन्दोपाध्याय, एन.एन.लॉव,पी.वी.काणे, एच.सी.राय, के.ए.नीलकण्ठ शास्त्री, आर.पी.कांगले, जयचन्द्र विद्यालंकार, मेयर स्मिथ हिलब्राण्ट आदि।

द्वितीयमतानुसार अर्थशास्त्र का रचना काल १००-४००ई. है। कौटिल्य एक कल्पित नाम है तथा अर्थशास्त्र एक जाली (अप्रामाणिक) ग्रन्थ है। इस मत के प्रमुख समर्थक – आस्टोस्टीन जौली, विण्टर नित्ज, ए.वी.कीथ, ई.एच.जान्सन, अरविन्दनाथ बोस, प्राणनाथ विद्यालंकार, हेमचन्द्र राय चौधरी, आदि विद्वान् हैं।

आस्टोस्टीन ने अपनी पुस्तक "मेगस्थनीज एण्ड कौटिल्य" में मेगास्थनीज तथा कौटिल्य के सम्बन्ध में विरोध दिखाने का प्रयास किया है। इसके बाद जौली ने १९२३ में पंजाब संस्कृत सिरीज, लाहौर से एक पुस्तक प्रकाशित हुयी; जो 'अर्थशास्त्र ऑफ कौटिल्य' नाम से है। इसमें उन्होंने अर्थशास्त्र को ३०० ई. का जाली ग्रन्थ स्वीकार किया है। तथा कौटिल्य को एक कल्पित राज्यमंत्री कहा है।[54] जिसका समर्थन डॉ. विन्टरनित्ज ने अपने ग्रन्थ 'ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर(१९२७ई.) में किया है। इसके पश्चात डॉ कीथ ने १९२८ ई. में सर आशुतोष स्मारक ग्रन्थ के प्रथम भाग में उपर्युक्त मत का ही समर्थन किया है।[55] परन्तु अधिकांश विद्वानों ने इतिहासकारों की दृष्टि से प्रथम मत ही प्रमाणिक है।

द्वितीय मत भ्रान्त धारणाओं पर आधारित है। जौली के भ्रम पूर्ण प्रचार और प्रस्तावना में वर्णित तर्कों को के. पी. जायसवाल ने अपने ग्रन्थ 'हिन्दू पॉलिटि' में खण्डन किया तथा स्पष्ट किया है कि अर्थशास्त्र जैसा संस्कृत साहित्य का महान् ग्रन्थ जाली नहीं है तथा इसकी रचना ४०० ई.पू. में हुई थी तथा यह कौटिल्य की प्रामाणिक कृति है।[56]

इसी प्रकार जयचन्द विद्यालंकार ने डॉ. कीथ के द्वारा दिये गये तर्कों की विस्तृत आलोचना करके अन्य इतिहासविदों की राय से यह स्पष्ट किया है कि कौटिल्य चन्द्रगुप्त मौर्य (३२५-२७५ई.पू.) के राज्य मंत्री थे, अर्थशास्त्र उनकी ही कृति है, जो कि प्रामाणिक रूप में उपलब्ध है तथा यह कृति ३००ई.पू. के लगभग रची गयी।[57]

---

54 वाचस्पति गैरोला, कौटिल्य अर्थशास्त्रम्, भूमिका, पृ० सं०,६९

55 वही.

56 के० पी० जयसवाल, हिन्दू-राज्यतन्त्र, परिशिष्ट भाग "ग" पृ० सं० ३२७-३६७

57 जयचन्द्र विद्यालंकार, भारतीय इतिहास की रूपरेखा-२ पृ० सं० ५४७, ६७३-७६०

१.७ अर्थशास्त्र पर प्राप्त टीका, संस्करण एवं अनुवाद

आचार्य कोटिय के जीवन तथा उनके विचारों से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। जिसमें से अधिकांशतः अर्थशास्त्र का अनुवाद मात्र है । अर्थशास्त्र के अनुवाद के अतिरिक्त कुछ टीकाओं का भी प्रकाशन हो चुका है, जिनका अर्थशास्त्र के प्रकाशन में महत्त्वपूर्ण योगदान है । कौटिल्य अर्थशास्त्र से पूर्व प्राप्त टीकाएँ निम्नांकित हैं—

१.प्रतिपादचन्द्रिका-[58] यह् टीका संभवतः १२वीं शताब्दी में भट्टस्वामी द्वारा लिखि गयी थी। जिसका सर्वप्रथम प्रयोग आर० शामशास्त्री द्वारा १९०९ में किया गया था। उन्होंने उक्त टीका को अर्थाशास्त्र के प्रथम संस्करण में प्रयुक्त किया। प्रतिपाद चन्द्रिका के प्राप्त भाग को के० पी० जयसवाल एंव ए० बनर्जी शास्त्री ने "दि जनरल ऑफ दि बिहार एन्ड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी(पटना)" १९२५-२६ में प्रकाशित करवाया । परन्तु भट्टस्वामी के संबन्ध में अन्य किसी प्रकार की जानकारी हमारे पास उपलब्ध नहीं है।

२.नयचन्द्रिका-[59] इसके लेखक वेदकविकुडा मणि महोपाध्याय श्री माधवराजयाजव मिश्र थे। यह टीका केरल के ए० के० मेनन पुस्तकालय में उपलब्ध थी । मद्रास पाण्डुलिपि पुस्तकालय ने १९१७-१८ में नयचन्द्रिका की एक प्रति तैयार की जिसे १९२४ डॉ० जौली व उदयवीर शास्त्री ने लाहौर से प्रकाशित किया। इसमें अर्थशास्त्र के १५ अधिकरणों में से मात्र ६ अधिकरणों का उल्लेख प्राप्त होता है।[60]

३.जयमंगलटीका-[61] शंकरार्य कृत जयमंगल टीका में अर्थशास्त्र का प्रथम अधिकरण प्राप्त होता है अर्थात् इस टीका में २१ अध्याय हैं। सर्वप्रथम १९२५-२६ में मद्रास से इस टिका को प्रकाशित किया गया।

४. चाणक्यटीका-[62] जयमंगल टीका के पश्चात् चाणक्य टीका मद्रास पुस्तकालय को प्राप्त हुई । भिक्षुप्रभापति द्वारा लिखित चाणक्य टीका को जी हरिहर शास्त्री द्वारा १९५६-५७ में प्रकाशित किया गया। यह भी प्राप्त टीकाओं की तरह अपूर्ण टीका है। इस टीका में अर्थशास्त्र

---

58 भट्टस्वामी, *प्रतिपादचन्द्रिका* (पटना, दि जनरल ऑफ विहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, १९२५-२६

59 माधवराज याजव, *नयचन्द्रिका*, लाहौर, १९२४

60 देवकान्ता शर्मा, कौटिल्य *के प्रशासनिक विचार,* पृ० सं० ७, प्रस्तावना

61 देवकान्ता शर्मा, कौटिल्य *के प्रशासनिक विचार,* पृ० सं० ८, प्रस्तावना

62 वही.

के द्वितीय अधिकरण तथा तृतीय अधिकरण का प्रथम अध्याय अर्थात् कुल ३७ अध्याय प्राप्त होते हैं।

उपर्युक्त चारों टीकाएँ दक्षिणभारत में प्राप्त हुयी हैं।

५. नीतिनिर्णीत-[63] उत्तर भारत में प्राप्त होने वाली पहली टीका है। जिसके लेखक जैनाचार्य योग्धम अथवा मुग्धविलास हैं । इस टीका में अर्थाशास्त्र का प्रथम अधिकरण एंव द्वितीय अधिकरण का प्रथम अध्याय प्राप्त होता है। यह टीका १९५९ में मुम्बई से प्रकाशित हुई है।

६. भासकौटिलीयम्- इस टीका के लेखक के विषय में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। परन्तु अर्थशास्त्र पर प्राप्त टीकाओं में भास कौटिलीयम् एक महत्त्वपूर्ण टीका है। जो मलयालम भाषा में प्राप्त है। प्रथम सप्तम अधिकरण तक का उल्लेख इस टीका में प्राप्त होता है अर्थात् अर्थशास्त्र के कुल १५० अध्यायों में से ११६ अध्याय भास कौटिलीयम् में वर्णित है।

भास कौटिलीयम् चार भागों में प्रकाशित हो चुका है । प्रथम तीन भाग त्रिवेन्द्रम तथा एक भाग मद्रास से प्रकाशित हुआ है । तीन में से प्रथम दो भाग सम्बसिवा द्वारा सम्पादित किये गये, जो त्रावेनकोर मेन्यूस्क्रिप्ट्स लाइब्रेरी से क्रमशः १९३० व १९३८ में हुआ । तृतीय भाग का सम्पादन वी०ए० रामास्वामी शास्त्री ने १९४५ में किया गया । चतुर्थ यूनिवर्सिटी ऑफ मद्रास से १९६० से प्रकाशित हुआ, के० एन० एज्यूथाचन ने किया।[64]

७. **श्रीमूला** – महामहोपाध्याय डॉ० गणपति शास्त्री ने अर्थशास्त्र पर एक पूर्ण टीका तैयार की जो संस्कृत भाषा में है । इस टीका के आधार पर कौटिलीय अर्थशास्त्र का संस्कृतानुवाद तीन भागों में १९२४-२५ में प्रकाशित हुआ।

अन्य टीकाएँ[65]-

१.वैदिकसिद्धान्तसंरक्षिणी- यह श्रीमूला टीका की व्याख्या करती है, जो पं. राजेश्वरशास्त्रि द्रविड़ द्वारा रचित है ।

२.जयमङ्गलाक्रोडपत्रम- यह जयमङ्गला टीका की व्याख्या करती है, जो पं. राजेश्वरशास्त्रि द्रविड़ द्वारा ही रचित है ।

---

63 वही.

64 वही.

65 सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी से प्रकाशित, सम्पादक: आचार्य श्रीविश्वनाथशास्त्रिदाता

संस्करण एवं अनुवाद

१. सर्वप्रथम शामशस्त्री ने मैसूर में प्राप्त अर्थाशास्त्र के कुछ अंशों का १९०५ में प्रकाशन किया, तदुपरान्त 1909 में अर्थशास्त्र का अग्रेंजी में अनुवाद शामशास्त्री द्वारा मैसूर से प्रकाशित किया गया । यह अनुवाद अर्थशास्त्र पर प्राप्त टीकाओं में भास कौटिलीयम् टीका से अधिक प्रभावित रहा है।

२. टी. गणपति शास्त्री ने श्रीमूला टीका के आधार पर 'दि अर्थशास्त्र ऑफ कौटिल्य' की रचना की । यह तीन भागों में वर्गीकृत है । टी. गणपति शास्त्री ने १९२४-२५ में प्रकाशित "दि अर्थशास्त्र ऑफ कौटिल्य" अर्थशास्त्र का अनुवाद व व्याख्या संस्कृत भाषा में किया जिसका प्रकाशन त्रिवेन्द्रम से हुआ है।

इस तरह कौटिल्य अर्थशास्त्र के साथ डॉ० शामशास्त्री व महामहोपाध्याय गणपतिशास्त्री का नाम अमर हो गया है । डॉ० शामशास्त्री का अग्रेंजी अनुवाद व म० म० गणपति शास्त्री का संस्कृतानुवाद इस विषय की सर्वांगीण, शोधपूर्ण और प्रमाणिक कृतियाँ हैं।

कौटिल्य अर्थशास्त्र का प्रस्तुत संस्करण म० म० गणपति शास्त्री के संस्करण पर आधारित है। अर्थशास्त्र के मूल भाग व प्रसंग के अनुसार अलग-अलग वर्गों, वाक्यों और वाक्यखण्डों में विभाजित किया गया है । जो उनकी स्वतंत्र देन थी।

३. आर० पी० कांगले कि पुस्तक *"द कौटिल्य अर्थशास्त्र"* में मोतीलाल वनारसी दास से १९९७ में प्रकाशित हुई है। इसका प्रथम संस्करण बाम्बे विश्वविद्यालय से १९६५ में प्रकाशित हुआ था । प्रथम भाग में कांगले द्वारा अर्थशास्त्र पर प्राप्त समस्त टीकाओं का आलोचनात्मक विवेचन किया गया है । इसमें अप्रकाशित पाण्डुलिपियों का भी प्रकाशन किया गया है । द्वितीय भाग में अर्थशास्त्र का अग्रेंजी में अनुवाद व तृतीय भाग में कतिपय समस्याओं का विवेचन किया गया है । जैसे- अर्थशास्त्र का रचनाकाल व रचयिता, कानून प्रशासन, विदेश नीति, आर्थिक नीति, वर्तमान में अर्थशास्त्र का महत्त्व आदि।

४. चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय ने *चाणक्य सूत्र प्रदीप* नामक पुस्तक चाणक्य सूत्रों के ५६५ सूत्रों की विस्तृत व्याख्या की है। चाणक्य सूत्रों की व्याख्या करते हुए चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय स्थान-स्थान पर मनुस्मृति से भी उदाहरण दिये हैं तथा सूत्रों में निहीत भावों की तुलना वर्तमान परिस्थियों से की है। चाणक्य सूत्र प्रदीप का प्रकाशन १९८७ में हुआ था।

५. प्राणनाथ विद्यालंकार ने १९२३ ई. में कौटिल्य अर्थशास्त्र का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित है । जो लाहौर से प्रकाशित हुआ था।

६. १९६४ में रामतेज शास्त्री 'पाण्डेय' द्वारा कौटिल्य अर्थशास्त्र का हिन्दी अनुवाद किया, जो काशी से प्रकाशित हुआ।

७. उदय वीर शास्त्री ने कौटिल्य अर्थशास्त्र[66] में मूल अर्थशास्त्र का हिन्दी अनुवाद किया। इसका प्रकाशन नई दिल्ली से हुआ है । इस ग्रन्थ में कौटिल्य की शासन व्यवस्था व अर्थव्यव्स्था पर विस्तृत व्याख्या प्राप्त होती है ।

८. वाचस्पति गैरोला द्वारा अर्थशास्त्र का अनुवाद वाराणसी चौखम्बा विद्याभवन से पुनर्मुद्रित संस्करण २००९ में *कौटिलीय अर्थशास्त्रम्* के नाम से प्रकाशित हुआ है। इसमें समस्त अधिकरण का हिन्दी अनुवाद है ।

९. प्रो० इन्द्र. एम. ए द्वारा कौटिल्य अर्थशास्त्र का अत्यन्त संक्षिप्त हिन्दी अनुवाद किया गया है। जो १९९० में दिल्ली : राजपाल एण्ड सन्स से प्रकाशित है।[67]

१०. कौटिल्य अर्थशास्त्र का एक अन्य अनुवाद आंग्ल भाषा में १९९२ में एल. एन. रंगराजन का *कौटिल्य दि अर्थशास्त्र* के नाम से प्रकाशित हुआ। जिसमें अर्थशास्त्र के उत्थान, कौटिल्य का जीवन, अर्थशास्त्र की टिप्पणियाँ आदि का उल्लेख किया गया है । पुस्तक में स्थान-स्थान पर कौटिल्य कालीन राज्य, भवन, दुर्गों के प्रकार, नगर आदि से संबन्धित मानचित्र व रेखाचित्र दिये गये हैं।[68]

इस प्रकार अर्थशास्त्र का हिन्दी व आंग्ल भाषा में अनुवाद प्राप्त हुए हैं तथा अर्थशास्त्र में वर्णित विचारों को आधार बनाकर अनेक ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं। जिसके द्वारा तत्कालीन भारत की स्थिति का ज्ञान सरलता एवं सुगमता से ज्ञात होता है।

१.८ अर्थशास्त्र पर आधारित अन्य महत्त्वपूर्ण कृतियाँ

१. डॉ० चन्द्रदेव प्रकाश द्वारा लिखित ग्रन्थ कौटिल्य[69] का प्रथम संस्करण १९८६ में ६ खण्डों में प्रकाशित हुआ । इन छः खण्डों में कौटिल्य के विभिन्न विचारों का उल्लेख किया गया है। कौटिल्य के पञ्चम खण्ड में सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक विचारों तथा अन्तिम छठे खण्ड में अन्य विचारकों से कौटिल्य की तुलना संक्षेप में की गई है।

---

[66] उदयवीर शास्त्री, कौटिल्य *अर्थशास्त्र* (नई दिल्ली: मेहरचन्द लक्षमण दास पब्लिकेशन्स, १९८८)

[67] देवकान्ता शर्मा, कौटिल्य के प्रशासनिक विचार, पृ.सं. ११.

[68] वही.

[69] चन्द्रदेव प्रकाश, कौटिल्य(भोपाल : यूनिवर्शल बुक स्टोर-१९८६)

२. उमेश कुमार द्वारा रचित पुस्तक कौटिल्य *थॉट ऑन पब्लिक ऐडमिनिस्ट्रेशन*,[70] कौटिल्य के राजनीतिक विचारों से अलग होकर लिखी गई है। इस पुस्तक में केन्द्रीय प्रशासन से ग्रामीण प्रशासन तक कार्यरत विभिन्न विभागों का उल्लेख किया है तथा कार्मिक समस्यायों पर संक्षिप्त प्रकाश डाला गया है और वित्त प्रशासन, न्यायिक प्रशासन व प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार का वर्णन किया गया है।

३. आचार्य दीपंकर द्वारा लिखित कौटिल्य कालीन भारत दो भागों में विभाजित है । यह ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य से लिखी गई है । प्रथम भाग में वैदिक युग, उपनिषद् काल, बौद्ध व जैन धर्म का योगदान एवं भारत के राजनीतिक विखराव का विस्तृत वर्णन किया गया है । द्वितीय भाग में भारत के समाज का आर्थिक ढाँचा, सामान्य प्रशासन, विदेश नीति की रूप रेखा का विवेचन किया गया है । अन्त में चाणक्य सूत्रों का हिन्दी अनुवाद सम्मिलित किया गया है। यह पुस्तक लखनऊ : उत्तरप्रदेश दिल्ली संस्थान १९८९ से प्रकाशित है।

४. काशी प्रसाद जयसवाल द्वारा लिखित ग्रन्थ हिन्दू पॉलिटी, काशी : नागरी प्रचारिणी सभा, संवत् २०११ से प्रकाशित है। इसमें प्रचीन राजव्यवस्था का चित्रण किया गया है तथा यह सिद्ध किया गया है कि अर्थशास्त्र के मूल रचनाकार कौटिल्य या चाणक्य ही है तथा अर्थशास्त्र निश्चित रूप से मौर्यकालीन कृति है।

५. वी० आर० रामचन्द्र दिक्षितर द्वारा लिखित *पुस्तक मौर्यन् पॉलिटी* मद्रास यूनिवर्सिटी ऑफ मद्रास से १९३२ ई० में प्रकाशित हुई । जिसमें कौटिल्य द्वारा स्थापित मौर्य साम्राज्य की शासन व प्रशासन व्यवस्था का उल्लेख मिलता है।

६. लुडविक स्टेनवर्क द्वारा *चाणक्य नीति टेक्सट ट्रेडिशन* में चाणक्य द्वारा वर्णित अनेक सूत्रों का उल्लेख किया गया है । इसमें दण्डनीति, राष्ट्रनीति, जनकल्याण आदि से सम्बन्धित लगभग १११९ सूत्रों का वर्णन किया गया है ।[71]

७. योगेन्द्रनाथ वाग्ची द्वारा लिखित *प्राचीन भारत की दण्डनीति* नामक पुस्तक का प्रकाशन १९६१ में कलकत्ता से हुआ । जिसमें कौटिल्य द्वारा उल्लिखित दण्डनीति का वर्णन प्राप्त होता है।

८. विनॉय चन्द्रसेन द्वारा लिखित पुस्तक *इकोनॉमिक्स इन कौटिल्य* १९६७ ई० में संस्कृत कॉलेज कलकत्ता से प्रकाशित हुई । जिसमें उद्योग व्यापार, मौद्रिक नीति, रोजगार, भूमि विभाजन आर्थिक दृष्टि से तथा सड़क निर्माण आदि का वर्णन किया गया है।

---

[70] उमेश कुमार, कौटिल्य थॉट ऑन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन(नई दिल्ली: नेशनल बुक आर्गेनाईजेशन, १९९०)

[71] देवकान्ता शर्मा, कौटिल्य के प्रशासनिक विचार, पृ.सं.११.

९. १९८९ ई० में रमेशचन्द्र गुप्ता की पुस्तक *अर्ली हिन्दू सिविलाइजेशन* का प्रकाशन नई दिल्ली से हुआ है। इसमें लेखक ने मौर्यकालीन व्यवस्था के अनेक पक्षों का वर्णन मेगस्थनीज की इण्डिका के आधार पर किया है। जिसके अध्ययन द्वारा अर्थशास्त्र में उल्लिखित शासन व्यवस्था की व्यवहारिकता की जानकारी प्राप्त होती है।

१०. मधूसूदन द्वारा लिखित कौटिल्य *का अर्थिक चिन्तन* १९९४ ई० में क्लासिक पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर से प्रकाशित है । यह ९ अध्यायों में विभक्त है । जिसमें कौटिल्य के आर्थिक चिन्तन का आधुनिक दृष्टि से वर्णन किया गया है । यह इनका शोध-प्रबन्ध है।

१.९ अर्थशास्त्र का परवर्ती साहित्यकारों पर प्रभाव-

संस्कृत साहित्य के कतिपय ग्रन्थकारों की कृतियों पर अर्थशास्त्र का प्रयाप्त प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । जिससे उसकी सार्वभौम मान्यता का पता चलता है। ई.पू. प्रथम सदी में विद्यमान महाकवि कालिदास से लेकर याज्ञवल्क्य, वात्स्यायन, विष्णुशर्मा, विशाखदत्त और बाणभट्ट जैसे कवि व स्मृतिकारों, गद्यकारों, नाटककारों की कृतियाँ नि:सन्देह रूप से अर्थशास्त्र से प्रभावित हैं । कालिदास के रघुवंशम्, कुमारसंभवम्, तथा अभिज्ञानशाकुन्तलम् अत्यधिक प्रभावित हैं।[72] वात्स्यायन (३००ई.) ने तो अपने कामसूत्र के एकमात्र आधार कौटिल्य का अर्थशास्त्र स्वीकार किया है और इसी हेतु इन दोनो का प्रकरण विभाजन भी एक ही जैसा है।[73]

संस्कृत में जन्तु विषयक कथाओं का प्रतिनिधित्व करने वाला एकमात्र ग्रन्थ पञ्चतन्त्र प्रधान ग्रन्थ है । जिसकी रचना ३००ई. के वाद की कथमपि नहीं है। इस कथा ग्रन्थ में चाणक्य के अर्थशास्त्र को मनुस्मृति तथा कामसूत्र की तरह अपने विषय का एक प्रतिनिधि ग्रन्थ कहकर स्मरण किया है तथा अर्थशास्त्र को नयशास्त्र कहकर भी संबोधित किया गया है ।[74] मृच्छकटिकम् में भी शासन व्यवस्था संबन्धी कुछ बातें अर्थशास्त्र से प्रभावित हैं।

विशाखदत्त ने ६००ई. के लगभग मुद्राराक्षस लिखा जिसमें आचार्य कौटिल्य की आंशिक जीवनी है । मुद्राराक्षस से आचार्य कौटिल्य के अतुल व्यक्तित्व का परिचय प्राप्त होता है । मुद्राराक्षस में चाणक्य को एक ऐसे नायक के रूप में प्रस्तुत किया गया है जो राक्षस को अपने

---

72 कौटिल्य अर्थशास्त्र २/१, १०/७, १७/५५, १०/७३, ९/१, ७/१५, १/२, ८/३, क्रमश: रघुवंश१५/९, कुमारसंभव६/७३, , रघुवंश१७/४४, १२/५५, १७/५६, १७/७६, १७/८९, १८/५० तथा शाकुन्तलम् २/५ ।

73 कामसूत्रमिदं प्रणीतम्। तस्यायं प्रकराधिकरण समुद्देशः। कामसूत्र १/१।

74 चाणक्य च विदुषे नमोस्तु, नयशस्त्र कर्तृभ्यः ततोधर्मशास्त्राणि मन्वादीनि, अर्थशास्त्राणि चाणक्यादीनि कामशास्त्राणि वात्स्यायनादीनि। पंचतंत्र कथामुखम् पृ.सं.१,२ ।

बुद्धिबल से पराजित करता है तथा मगध के प्रति राक्षस की अपार निष्ठा से प्रभावित होकर, चन्द्रगुप्त मौर्य का महामात्य बनने पर विवश कर देता है।

विशाखदत्त के समकालीन कथाकार एवं काव्यशास्त्री आचार्य दण्डी ने कौटिल्य दण्डनीति के अध्ययन पर बल दिया है तथा दण्डी का कथन है कि जो इस ६००० श्लोक निर्मित उत्तम ग्रन्थ को पढ़ेगा उसको उत्तम फल मिलेगा-

"अधीष्वतावद् दण्डनीतिम् तदिदमिदानम् आचार्य विष्णुगुप्तेन मौर्यार्थे षड्भि: श्लोक सहस्त्रै: संक्षिप्ता । सैवेयमधीत्य सन्यगनुष्ठीयमानः यथोक्त कार्यक्षमेति"[75]

कादम्बरी जैसे बृहत्कथा काव्य के निर्माता बाणभट्ट (७००ई.) ने कौटिल्य अर्थशास्त्र का तो उल्लेख किया है । परन्तु निकृष्ट शास्त्र की संज्ञा दी है। बाण का कथन है कि उन लोगों के लिये क्या कहा जाय जो अतिनृशंस कार्य को उचित बताने वाले कौटिल्य के शास्त्र को प्रमाण मानते हैं-

किं वा तेषां सांप्रतं येषामतिनृशंसप्रयोगोपदेशे कौटिल्यशास्त्रप्रमाणम् ।[76]

संभवत: बाण ने अर्थशास्त्र को निकृष्ट इसलिये कहा होगा क्योंकि कादम्बरी श्रृंगार रस प्रधान काव्य है। श्रृंगार प्रधान काव्य के कवि को प्रशासनिक आर्थिक आदि सम्बन्धी बातें कैसे समझ में आयेंगी।

इसके अतिरिक्त नवम-दशम शताब्दी में उपलब्ध ग्रन्थ सोमदेव सूरि कृत 'नीतिवाक्यामृत' है जो सूत्रात्मक शैली में है । उन्होंने इस ग्रन्थ के अन्त में कौटिल्य अर्थशास्त्र का उल्लेख करते हुए कहा है कि मैंने यह ग्रन्थ कौटिल्य के अर्थशास्त्र के आधार पर बनाया है ।[77] उनके ग्रन्थ में अर्थशास्त्र में उल्लिखित अनेक वाक्यों की पुनरावृत्ति दृष्टिगत होती है । भारतीय रचनाकारों के अतिरिक्त यूनानी राजदूत मेगस्थनीज द्वारा रचित पुस्तक 'इण्डिका' में भी अर्थशास्त्र में दिये गये अनेक नियमों का उल्लेख पाया जाता है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि अर्थशास्त्र का व्यापक और निरन्तर प्रभाव संस्कृत साहित्यकारों एवं विद्वानों पर पड़ा है तथा भारतीय इतिहास में चाणक्य जैसी प्रतिभायें समाज का मार्ग प्रशस्त करते हुए एक आदर्श व्यवस्था की स्थापना हेतु समर्पित रहती हैं । भारत के साथ-साथ विदेशों में भी कौटिल्य के व्यक्तित्व को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हैं । मेगस्थनीज तथा फाह्यान द्वारा वर्णित भारत के सन्दर्भ में लोगों एवं विचारों का

---

[75] दण्डी, दशकुमारचरितम्, उच्छवास् ८, पृ.सं. २५६

[76] बाणभट्ट, कादम्बरी

[77] देवकान्ता शर्मा, कौटिल्य *के प्रशासनिक विचार,* पृ० सं० ५४, प्रस्तावना

अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि अपने जीवन काल में कौटिल्य कितने सफल, प्रसिद्ध एवं सम्मानित व्यक्ति थे ।

इस लघु शोध-प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में अर्थशास्त्र की परम्परा, कौटिल्य एवं अर्थशास्त्र का संक्षिप्त विश्लेषण के पश्चात् द्वितीय अध्याय में आर्थिक की चर्चा की जायेगी, जिनसे तत्कालीन समय में राज्य को प्रत्यक्ष रूप से आय की प्राप्ति होती थी । इसके अतिरिक्त कोष, सन्निधाता तथा समाहर्त्ता के स्वरूप एवं कर्तव्य के विषय में विवेचन किया जायेगा है और आधुनिक समय की नीतियों से समीक्षा भी की जायेगी ।

द्वितीय अध्याय:

आर्थिक विभाग

चन्द्रगुप्त मौर्य (३२५-२७३ ईसा०पूर्व०) के समकालीन आचार्य कौटिल्य ने लगभग ३०० ईसा पूर्व में एक राज्य के संचालन के लिए अर्थशास्त्र नामक ग्रन्थ की रचना की थी। जिसमें राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक एवं प्रशासनिक विषयों पर विशद रूप से वर्णन किया है। राज्य को सुव्यवस्थित रुप से संचालित करने के हेतु राज्य के सात अंग बताएँ है। जिन्हें राज्य की प्रकृति भी कहा जाता है-

स्वाम्यमामात्यजनपददुर्गकोषदण्डमित्राणि प्रकृतयः।[1]

उपर्युक्त सप्त प्रकृतियाँ एक-दूसरे से संबन्धित हैं । इसमें किसी एक के न रहने पर राज्य को सुव्यवस्थित रूप से चलाना कठिन हो जाता है । मनुस्मृतिकार ने भी राज्य के सात अंग बताएँ हैं-

स्वाम्यमामात्यौ पुरं राष्ट्रं कोशदण्डौ सुहृत्तथा। सप्तप्रकृतयो ह्येताः सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते॥ [2]

रेखा-चित्र संख्या: २.१

1 अर्थशास्त्र, ६/१६/१, पृ.सं. ४४१.

2 मनुस्मृति ३/२९४.

सात अंगों के समान कौटिल्य ने **कोष** का विषद वर्णन किया है। क्योंकि राज्य के संचाललन के लिए राजा के पास कोष की आवश्यकता सदैव बनी रहती है। विभिन्न प्रकार के व्यय राजा तभी कर सकता है, जब उसके पास अत्यधिक मात्रा में धन हो। विना वित्त का न तो सैन्य-व्यवस्था हो सकती है, न न्याय और न चिकित्सा। शिक्षा, यातायात आदि सभी कार्यों के लिए अर्थ आवश्यक है। जिस राजा का कोष जितना समृद्ध होगा वह राज्य को उतना ही सुदृढ़ और जनहितकारी बना सकेगा। राजकोष के क्षीण हो जाने पर सम्पूर्ण राजव्यवस्था विगड़ जती है।

कौटिल्य कहते हैं कि सभी कार्य कोष पर निर्भर हैं। इसलिए राजा को चाहिए सबसे पहले कोष पर ध्यान दे- *कोषपूर्वा सर्वारम्भाः । तस्मात् पूर्वंकोषमवेक्षेत्।*[3] और कौटिल्य ने राजकोष के विषय में लिखा है कि राजकोष ऐसा होना चाहिए जिसमें पूर्वजों की तथा अपनी धर्म की कमाई संचित हो, धन-धान्य, सुवर्ण, चाँदी नाना प्रकार के बहुमूल्य रत्न तथा हिरण्य भरा-पूरा हो, जो दुर्भिक्ष एवं आपत्ति के समय सारी प्रजा की रक्षा कर सके। इन गुणों से उक्त खजाना कोष सम्पन्न कहलाता है-

धर्मादिगतः पूर्वैः स्वयं वा हेमरूप्यप्रायश्चित्रस्थूलरत्नहिरण्यो दीर्घामप्यापादम् आनयति सहेतेति कोशसम्पत्। [4]

राजकोष को संचालित करने के लिए कौटिल्य ने पृथक्-पृथक् आर्थिक विभाग की स्थापना की थी तथा प्रत्येक विभाग के अपने अध्यक्ष होते थे। जो **सन्निधाता** के अधीन थे व सन्निधाता कोषाध्यक्ष कहलाता था। सन्निधाता के विषय में कहा है कि सन्निधाता कोषगृह, पण्यगृह (राजकीय विक्रेय वस्तुओं का स्थान), कोष्ठागार (भण्डारगृह), कुप्यगृह (अन्नागार), शस्त्रागार और कारागार का निर्माण करवाता था-

सन्निधाता कोषगृहं पण्यगृहं कोष्ठागारं कुप्यगृहमायुधागारं बन्धनागारं च कारयेत्।[5]

---

[3] अर्थशास्त्र, २/२४/८, पृ.सं. १०९.

[4] अर्थशास्त्र, ६/९६/१, पृ.सं. ४४३.

इस तरह सम्पूर्ण कोष का संचालन इसके अधीन होता था।

राजस्व विभाग का अधिकारी **समाहर्त्ता** होता था। समाहर्त्ता का मुख्य कार्य था, करों का संग्रह करना और दुर्ग, राष्ट्र, खनि, सेतु, वन, व्रज, तथा व्यापार संबन्धी कार्यों का निरीक्षण करता था- *समाहर्त्ता दुर्गं राष्ट्रं खनिं सेतुं वनं व्रजं वणिक्पथं चावेक्षेत्।*[6]

श्रीमूला टीकाकार ने कहा है कि समाहर्त्ता को दुर्गादि सप्त कार्यों की चिन्ता करनी चाहिए- *'दुर्गादिसप्तकं समाहर्त्ता चिन्तनीयमित्याह'।*[7]

चाणक्य टीकाकार ने तो दुर्गादि सप्त कार्यों को राज्य का आय शरीर कहा है- *दुर्गादिसप्तविधमायशरीरम् ।* [8]

इसके अतिरिक्त समाहर्त्ता करणीय, सिद्ध, शेष, आय, व्यय तथा नीवी आदि कार्यों को उचित तरीके से सम्पन्न कारता था-

करणीयं सिद्ध शेषमायव्ययौ नीवी च।[9]

१. **करणीय** छः प्रकार का होता है- विभाग, प्रचार, शरीरावस्थान, आदान, सर्वसमुदयपिण्ड तथा संजात।[10]
२. **सिद्ध** भी छः प्रकार का होता है- कोषार्पित, राजहार, पुरव्यय, पुरसंवत्सरानुवृत्त, शासनमुक्त और मुखाज्ञप्त।[11]
३. **शेष** के भी छः भेद हैं- सिद्धकर्मप्रयोग, दण्डशेष, बलात्कृत प्रतिस्तब्ध, अवसृष्ट, असार, और अल्पसार ।[12]

---

[5] अर्थशास्त्र, २/२१/५, पृ.सं. ९५.

[6] अर्थशास्त्र, २/२२/६, पृ.सं. ९९.

[7] कौटिलीय अर्थशास्त्रम् पञ्चटीकोपेतम्, २/२४/६, पृ.सं. ७५.

[8] वही.

[9] अर्थशास्त्र, २/२२/६, पृ.सं. १०१.

[10] अर्थशास्त्र, २/२२/६, पृ.सं. १०१ ।

[11] वही.

[12] वही.

४. **आय** तीन प्रकार का है- *वर्तमानः पर्युषितोऽन्यजातश्चायः।*[13]

प्रतिदिन की आमदनी वर्तमान आय होती है। पिछले वर्ष का शेष तथा शत्रुदेश से प्राप्तधन पर्युषित आय है । भूले हुए धन की स्मृति, अपराध स्वरूप प्राप्त धन, कर के अतिरिक्त अन्य उपायों से या प्रभुत्व से प्राप्त धन तथा लावारिश का धन, भेंट स्वरूप प्राप्त धन, शत्रु सेना से अपहृत धन अन्यजात आय कहलाती है।

इसके अतिरिक्त व्ययप्रत्याय आय भी होती है जिसमें सैनिक खर्च, स्वास्थ्य –विभाग तथा भवन निर्माण आदि के व्यय से बचा हुआ धन होता था- *विक्षेपव्याधितान्तरारम्भशेषश्च व्ययप्रत्यायः।*[14]

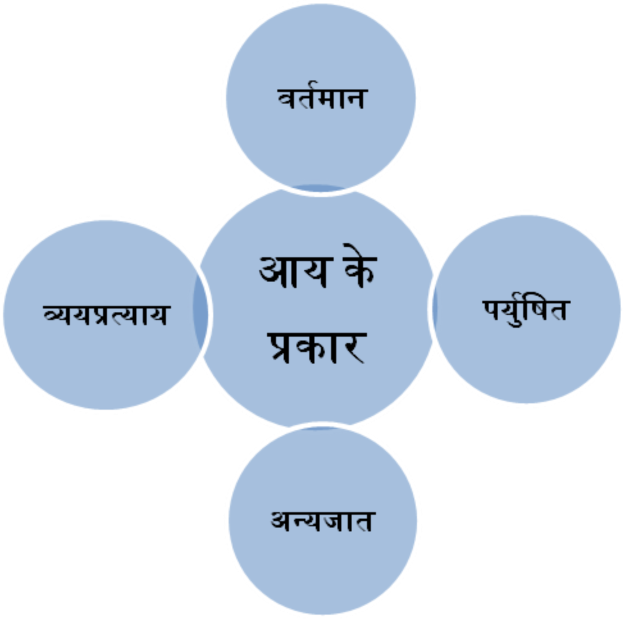

रेखा-चित्र संख्या: २.२

५. **व्यय** चार प्रकार होता है- *नित्य नित्योत्पादिको लाभो लाभोत्पादिक इति व्ययः।*[15]

नित्य- प्रतिदिन नियमित व्यय को नित्य कहते हैं।

---

13 वही.

14 वही.

15 अर्थशास्त्र, २/२२/६, पृ.सं. १०२।

नित्योत्पादिक- नियमित व्यय से अधिक खर्च होने वाला धन नित्योत्पादिक तथा लाभोत्पादिक कहलाता था।

लाभ- पाक्षिक, मासिक तथा वार्षिक के लिए व्यय किया गया धन लाभ कहलाता था।

रेखा-चित्र संख्या: २.३

६. **नीवी-** सभी तरह के आय-व्यय का भली भाँति हिसाब करके बचत के रूप में निकलने वाले धन को नीवी कहते हैं- *व्ययसञ्जातादायव्ययविशुद्धा नीवी प्राप्ता चानुवृत्ता चेति।*[16] यह दो प्रकार का होता है-

प्राप्त नीवी- खजाने में जमा हुए धन को प्राप्त नीवी कहते हैं।

अनुवृत्त नीवी- जो खजाने में जमा किये जाने वाला है।

इस प्रकार समाहर्त्ता उपर निर्दिष्ट विधियों, साधनों एवं मार्गों से राजकीय धन का संग्रह करता था । आय-व्यय में वचत हानि का लेखा जोखा ठीक प्रकार से रखता था । तथा कौटिल्य ने यह निर्देश दिया है कि यदि किसी विशेष अवस्था में भविष्य में किसी विशेष आय की आशा में पहले अधिक व्यय भी करना तो वैसा करके आय बढ़ाये-

[16] अर्थशास्त्र, २/२२/६, पृ.सं. १०२ ।

एवं कुर्यात्समुदयं वृद्धिं चायस्य दर्शयेत् । ह्रासं व्ययस्यं च प्राज्ञः साधयेच्च विपर्ययम्।[17]

आर्थिक विभाग

आचार्य कौटिल्य ने राज्य प्रशासन को सुव्यवस्थित रूप से संचालित करने के लिए अध्यक्ष प्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में २६अध्यक्ष विभागों तथा उनके कर्तव्यों का वर्णन किया । विभाग राज्य के अधीन थे, एवं राज्य की ओर से इन विभागों को कानूनी मान्यता प्राप्त थी। वे विभाग अधोलिखित हैं-

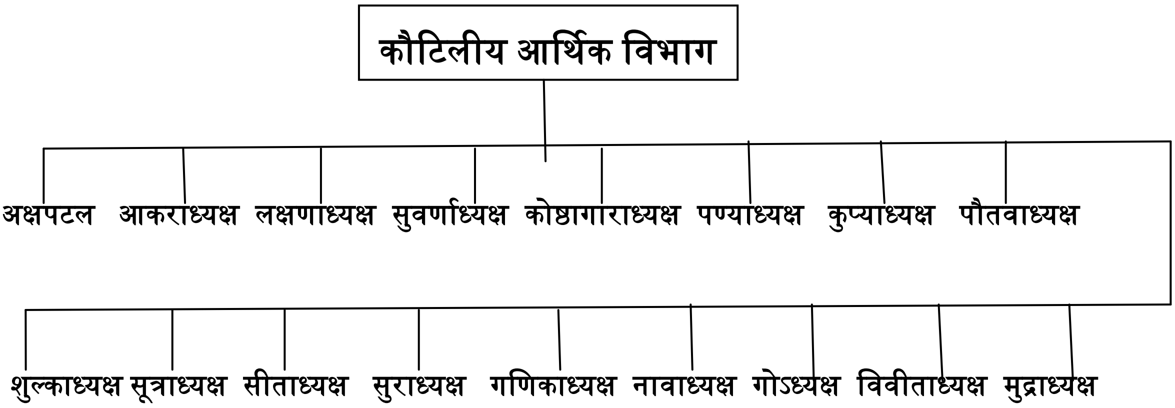

रेखा-चित्र संख्या: २.४

२.१ अक्षपटल विभाग-

इस विभाग के अध्यक्ष का मुख्य कार्य आय- व्यय का निरीक्षण करता था । जिसे महालेखार के नाम से जाना जाता था । यही अक्षपटल का निर्माण करवाता था, जिसका दरवाजा पूर्व या उत्तर की दिशा की ओर होता था । उनमें लेखकों (क्लर्कों) के बैठने के लिए कक्ष और आय-व्यय की निबन्ध पुस्तकों की नियमित व्यवस्था होती थी-

अक्षपटलमध्यक्षः प्राङ्मुखं वा विभक्तोपस्थानं निबन्धपुस्तकस्थानं कारयेत्।[18]

---

[17] अर्थशास्त्र, २/२२/६, पृ.सं. १०२.

[18] अर्थशास्त्र, २/२३/७, पृ.सं. १०३ .

एकाउण्ट्स बुक्स में विभागों की नामावली, जनपदों की पैदावार एवं आमदनी का विवरण, खान तथा कारखानों के आय व्यय का हिसाब, कर्मचारियों की नियुक्ति, अन्न एवं सुवर्ण आदि का उपयोग, प्रयास (अनाज के गोदाम), योग (अच्छे- बुरे द्रव्य की मिलावट), स्थान- गॉव, वेतन, विष्टि (वेगार),आदि का ब्यौरा, रत्नसार एंव कुप्य आदि पदार्थो के मूल्य, उनका गुण, तौल, लम्बाई- चौड़ाई, ऊँचाई एंव असली मूल धन का उल्लेख, देश, ग्राम जाति, कुल, सभा, समाज का धर्म व्यहार, चरित्र एंव परिस्थियों का उल्लेख, राजकीय सहायता से जीवित रहने वाले प्रग्रह (देवालय, मंत्री, पुरोहित का सम्मान), भेंट, परिहार (कर आदि का न लेना), महारानी व राजपुत्रों द्वारा रत्न, भूमि आदि की प्राप्ति आदि का विवरण तथा इनको नियमित दिया जाने वाले धन के अतिरिक्त दिया हुआ धन, उत्सवों तथा स्वास्थ्य संबन्धी सुधारों से प्राप्त धन, मित्र राजाओं तथा शत्रुराजाओं के मध्य हुए सन्धि विग्रह आदि के निमित्त प्राप्त हुआ तथा खर्च हुए धन का विवरण आदि के लेखा जोखा का विवरण होता था।[19]

इसके पश्चात् सभी उत्पत्ति केन्द्रों व विभागों के लिए किये जाने वाले तथा किए गये और बचे हुए आय, व्यय, नीवी कार्यकर्ताओं की उपस्थिति, प्रचार, चरित्र और विभाग आदि सब बातों को रजिस्टर में दर्ज करके राजा को दिया जाता था।[20]

अध्यक्ष को यह अधिकार होता था कि वह प्रतिदिन प्रति पांच दिन प्रतिपक्ष (१५ दिन), प्रति मास, प्रतिचार मास और प्रतिवर्ष के क्रम से राजकीय आय, व्यय एवं नीवी का लेखा जोखा साफ सुथरे ढंग से हो। कौटिल्य ने रजिस्टर के स्वरूप को बताया है कि उसमे इस तरह के खाने होने चाहिए, व्युष्ट, देश, काल, मुख, लाभ (पक्ष मास वर्ष के क्रम से) व्यय का कारण देय वस्तु का नाम, मिलावटी वस्तु में अच्छाई-बुराई का उल्लेख, तौल किसकी आज्ञा से व्यय किया गया, किसको दिया गया, भाण्डागारिक और लेने वाले का पूरा विवरण हो।[21]

---

19 अर्थशास्त्र, २/२३/७, पृ.सं. १०४.

20 वही.

21 वही.

कोष धन या कोष रजिस्टर लाने वाले अध्यक्ष का भी जाँच किया जाता था कि उसके द्वारा दिया गया विवरण सही है कि नहीं, आवश्यकता पड़ने पर गुप्तचरों को भी उसके भेद जानने के लिए नियुक्त किया जाता था।

वर्तमान समय में लेखा जोखा का कार्य नियंत्रक व महालेखा परीक्षक तथा वित्त पर नियंत्रण रखने के लिए वित्तीय समितियाँ जैसे प्राक्कलन समिति, लोक लेखा समिति व सार्वजनिक समिति कार्य कर रहीं हैं।

२.२ आकराध्यक्ष विभाग-

खान विभाग के अध्यक्ष के द्वारा **ताँबा, सीसा, त्रपु, वैकृंतक, आरकूट, वृत्त, कंस और ताल** आदि अन्य प्रकार के लोहों का कार्य करवाया जाता था । लोहे से बनी वस्तुओं और तत्सम्बन्धी कार्य-व्यवहार को वह अपनी निगरानी में करवाता था।[22]

२.२.१ खान एवं खनिज स्थान की पहचान-

अध्यक्ष को शुल्वशास्त्र, धातुशास्त्र और मणिपराग आदि विषयों मे निपुण होना चाहिए या उन विषय विशेषज्ञों तथा उन वस्तुओं के व्यापारियों के साथ रहकर, कुन्धी, धौकनी, सन्शी आदि आवश्यक सामग्री को साथ लेकर कीटी, मूषा, राख आदि लक्षणों को देखकर पुरानी खान की परीक्षा करे । यदि मिट्टी, पत्थर, पानी आदि मे धातु मिली हुयी हो या उनका रंग चमकदार हो या वे वजनदार प्रतीत हों अथवा उनमें गन्ध आती हो तो उन लक्षणों से जान लेना चाहिए कि उस स्थान पर खान है।[23]

परिचित पहाड़ो के गड्ढों, गुफाओं, तराइयों, पथरीले स्थानों एवं शिलाओं से ढ़के हुए छेदों के द्वारा बहने वाले जल से जिसका रंग जामुन, आम, ताड़ का फल, पक्की हल्दी, हरताल,

22 .अर्थशास्त्र २/२८/१२/ पृ.सं.१४०.

23 अर्थशास्त्र २/२८/१२/ पृ.सं.१३६.

मैनसिल, शहद के रंग का हो और अपने समान रंग के पानी तथा औषधि तक बहने वाले चिकने भारी जल को देखकर **सोने** की खान की पहचान करनी चाहिए।[24]

इसके अतिरिक्त जहाँ एक जल को दूसरे जल में मिलाने पर यदि वह तेल की तरह फैलने लगे या निरबिसी फूल के समान पानी को साफ करता हुआ नीचे बैठ जाये अथवा सौ पल ताँबा या चाँदी डालने पर सुनहरा बना रहे तो उस जल स्रोत में अवश्य सोने की खान है।

ताँबे की खान के विषय में कहते हैं जहाँ पर पाषाण धातु, भूमि धातु और ताम्र धातुओं तथा मिट्टी के चिकने तथा मृदु भू भाग हों तो वहाँ ताँबे की खान होती है।[25]

ताँबा चार प्रकार का होता है-

१.पिङ्गल २.हरित ३.पाटल ४. लोहित

जहाँ की भूमि कौए के समान काली, कबूतर व गोरोचन की आकृति वाली, सफेद रेखाओं से युक्त एवं दुर्गन्धपूर्ण हो, वहाँ **सीसा** की खान समझना चाहिए ।[26]

परन्तु जहाँ की भूमि ऊसर के साथ कुछ सफेद हो अथवा पके हुए ढेले के रंग की हो वहाँ सफेद सीसे की खान समझनी चाहिए।

जो भूमि चिकने पत्थरों वाला, कुछ सफेदी लिए एवं लाली लिए हो अथवा उसकी आकृति निर्गुन्डी के पुष्प से मिलती हो तो वहाँ **लोहे** की खान समझनी चाहिए तथा जो भूमि कौए की आकृति अथवा भूर्जपत्र की आकृति का हो वहाँ **स्पाती लोहे** की खान होती है-

कुरुम्बः पाण्डुरोहितः सिन्दुवारपुष्पवर्णो वा तीक्ष्णधातुः । काकाण्डभुजपत्रवर्णो वा वैकृन्तकाधातुः ।[27]

---

[24] वही.

[25] अर्थशास्त्र-२/२८/१२ पृ.सं.-१३८.

[26] वही.

[27] वही. पृ.सं., १३९.

जहाँ की भूमि साफ, चिकना, दीप्त, शब्द देने वाला अत्यन्त शीतल और फीके रंग वाला हो वहाँ **मणियों** की खान होती है।[28]

इस प्रकार खान की पहचान तथा उनका सही प्रकार से संचयन करने से कोष की वृद्धि होती है। कौटिल्य कहते हैं कि कोष की उन्नति खान पर निर्भर है, कोष से शक्तिशाली सेना तैयार की जा सकती है और इस कोष गर्भा पृथ्वी को कोष व सेना से प्राप्त किया जा सकता है- *आकारप्रभवः कोषः कोषाद्दण्डः प्रजायते । पृथिवी कोषदण्डाभ्यां प्राप्यते कोषभूषणा ॥*[29]

२.३ लक्षणाध्यक्ष विभाग-

यह राज्य में मुद्रा जारी करने का प्रमुख अधिकारी था । हर टकसाल **सौवर्णिक नामक** अधिकारी के अधीन होते थे ।

मौर्यों की राजकीय मुद्रा पण थी । इसके ऊपर सूर्य, चन्द्रमा, पीपल, मयूर, बैल, सर्प आदि खुदे होते थे । अतः इसे आहत सिक्का कहा जाता है । इस काल के सिक्के सोने, चाँदी और ताँबें के बने होते थे ।[30]

स्वर्ण सिक्के – निष्क एवं सुवर्ण

चाँदी के सिक्के- पण या रूपक, कर्षापण, धरण या शतमान।

---

[28] वही.

[29] अर्थशास्त्र-२/२८/१२ पृ.सं.-१४२.

[30] एस. के .पाण्डे, *प्राचीन भारत का इतिहास*, पृ.सं.१९२.

ताँबे के सिक्के-माषक या

काकणि।

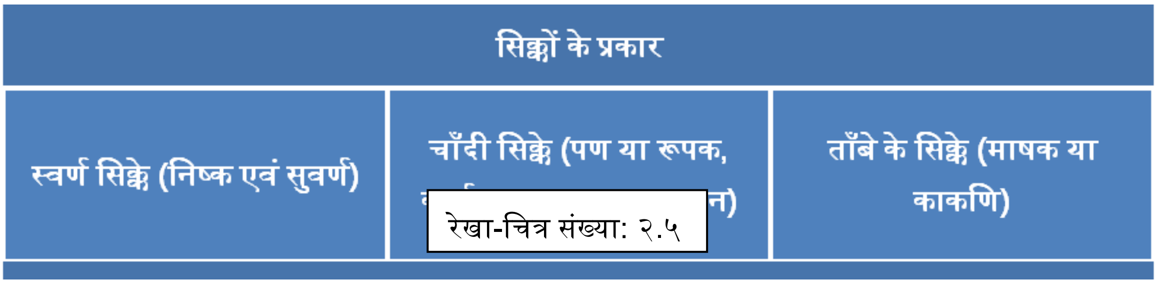

रेखा-चित्र संख्या: २.५

लक्षणाध्यक्ष का कार्य था कि वह पण, अर्धपण, पादपण तथा अष्टभाग नामक चाँदी के सिक्कों को विधिपूर्वक ढ़लवाये। १६ मास का एक पण होता है जिसमे चार मास का लोहा, ताँबा, राँगा, सीसा तथा अँजन इनमें से कोई भी एक मास तथा बाँकी ११ मास चाँदी होनी चाहिए। इस प्रकार एक सिक्के के निर्माण लगभग ३/४ हिस्सा चाँदी होता था। जो सबसे अधिक व मौर्य काल में सर्वाधिक चाँदी के सिक्को क प्रचलन था।

इसी हिसाब से अर्धपण (अठन्नी) पादपण (चवन्नी), अष्टभागपण (दुअन्नी) आदि को ढ़लवाये।[31]

[31] अर्थशास्त्र, २/२८/१२पृष्ठ सं.१४०.

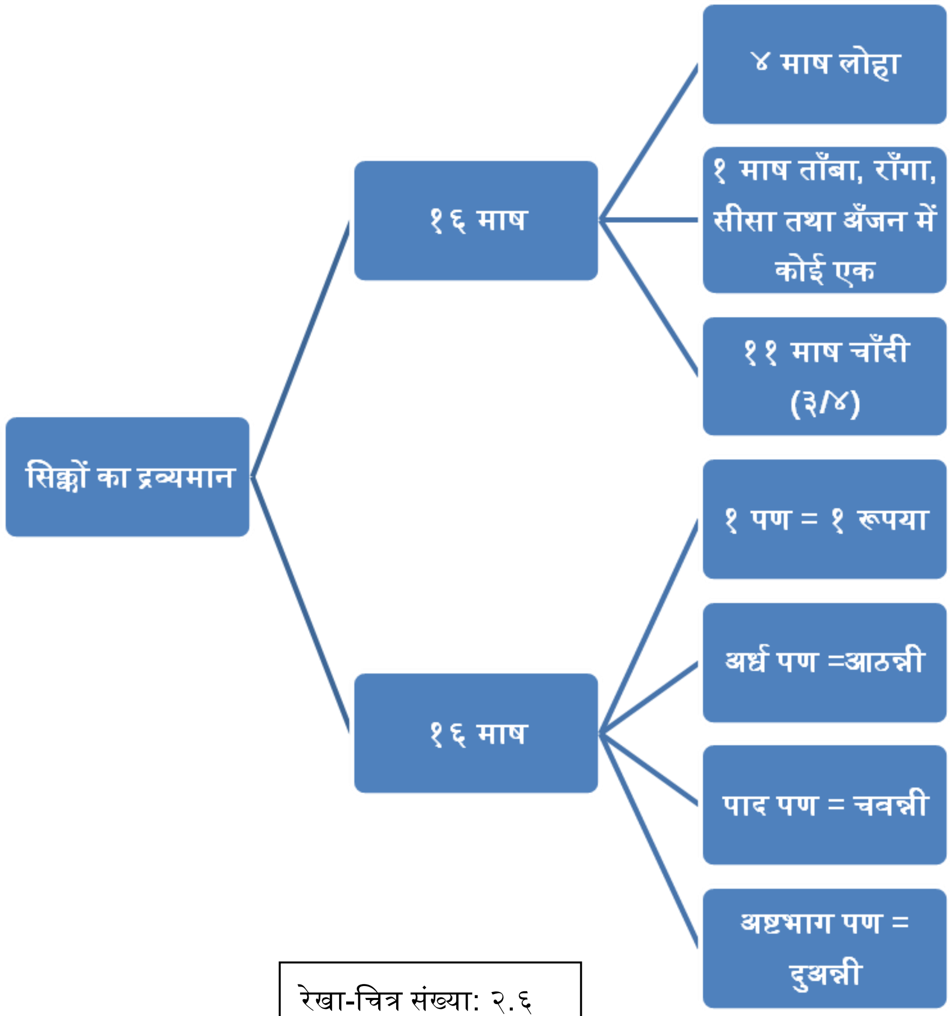

रेखा-चित्र संख्या: २.६

रूपदर्शक (सिक्कों के विशेषज्ञ) को इस बात की व्यवस्था करता था कि कौन सा सिक्का चलाया जाय और कौन सा सिक्का खजाने में जमा किया जाये-'*रूपदर्शकः पणयात्रां व्यावहारिकीं कोषप्रवेश्यां च स्थापयेत् ।*[32]

कौटिल्य के इस नियम की व्याख्या श्रीमूला टीकाकार ने इस प्रकार से किया है-

'रूपदर्शक इति । रूपदर्शकः रूपपरीक्षकः, पणयात्रां पणदानादानप्रस्थानम्, व्यवहारिकीं व्यवहारप्रयोजनाम्, कोषप्रवेश्यां च कोषप्रवेशनयोग्यां च, स्थापयेद् ईदृशी पणयात्रा व्यवहारार्था ईदृशी कोषप्रवेशनार्थेति तत्सारासारभावपर्यालोचनया व्यवस्थापयेत् । इयं राजकतृका पणयात्रा ।[33]

---

[32] वही.

[33] कौटिलीय अर्थशास्त्रम् पञ्चटीकोपेतम्, २/३०/१२, पृ.सं. २२०-२२१.

२.४ सुवर्णाध्यक्ष विभाग-

सोने चाँदी से सम्बन्धित समस्त कार्य अक्षमाला में होने चाहिए अन्यत्र नहीं । इसका कारण यह है कि लोगों को आभूषणों के लिए भटकना नहीं पड़ेगा तथा यह सुवर्णाध्यक्ष की निगरानी में रहेगा जिससे पैसों का गबन नहीं होगा । विशिखा सर्राफा बाजार में चतुर कुलीन, विश्वस्त और पारखी सर्राफों को बसाया जाय । इसका निर्माण सुवर्णाध्यक्ष स्वयं करवाये ।[34]

कौटिल्य ने पाँच प्रकार के स्वर्ण बताये हैं-

१.जाम्बूनद (मेरु पर्वत से निकलने वाला जाम्बू नदी से उत्पन्न जामुनी रंग वाला)

२.शातकुम्भ (शतकुम्भ पर्वत से निकलने वाला)

३.हाटक (सोने की खान से उत्पन्न होने वाला सेवती पुष्प की भाँति)

४. वैणव (वेणु पर्वत पर उत्पन्न कर्णिकार पुष्प की आकृति का)

५. श्रृंगिशुक्तिज (स्वर्ण भूमि में उत्पन्न, मैनसिल के रंग का)

स्वर्ण के तीन अन्य प्रकार-

१.जातरूप (स्वयं शुद्ध) २.रस विद्ध (रसायन क्रियाओं द्वारा निर्मित) ३.आकरोद्गत

(खानों से निकला हुआ)।[35]

इसके अतिरिक्त कौटिल्य ने १४ गुण सोने के आभूषणो में माने हैं-

१.एक सा रंग होना २. वजन तथा रूप में समान होना ३. बीच में गाँठ का न होना ४.टिकाऊ होना ५.अच्छा चमकाया हुआ होना ६.बनावट ठीक होना ७.अलग –अलग हिस्सो वाला ८.पहनने में साफ सुथरा ९.कांतिमान १०.अच्छा दिखायी देने वाला ११.एक जैसी

[34] अर्थशास्त्र, २/२९/१३ पृष्ठ सं. १४३.

[35] अर्थशास्त्र २/२९/१३ पृष्ठ सं १४९.

बनावट का १२.आयुक्त छिद्रो से रहित १३.मन तथा आँखों को अच्छा लगने वाला १४.उचित आकृति विन्यास वाला, ये चौदह गुण आभूषण के बतायें हैं।

इसी प्रकार चाँदी को भी चार प्रकार का बताया गया है-

१. तुत्थोद्गत (तुत्थ नामक पर्वत से उत्पन्न चाँदी चमेली के फूल के समान)
२. मौडिक (असम में उत्पन्न तगर पुष्प के समान)
३. कांबुक (कौंबु पर्वत से उत्पन्न)
४. चाक्रवालिक (चक्रवाल खान से उत्पन्न कन्द पुष्प के समान)।

तथा वही चाँदी शुद्ध होती है जिसमें बुदबुदे उठे हों और जो स्वच्छ, चमकदार एवं समान श्वेत हो।[36]

कौटिल्य ने सोने तथा चाँदी के समस्त भेदों की चर्चा की है तथा शुद्ध एवं अशुद्ध सभी प्रकारों को समझाया हैं जिससे प्रजा सोने व चाँदी से बने आभूषणों को पहचान सके तथा तथा सर्राफ उसे ठगने न पायें । सर्राफ़ों को भी शुद्ध धातु के आभूषणों को ही बेंचना पड़ता था।

२.५ कोष्ठागार अध्यक्ष विभाग-

यह विभाग सन्निधाता नामक अध्यक्ष की देखरेख में होता था । इसके अतिरिक्त कोषगृह, कुप्यगृह, आयुधागार तथा बन्धनागार भी था ।

कौटिल्य के अनुसार कोष्ठागार अध्यक्ष को १. सीमा २. राष्ट्र ३. क्रयिम ४. परिवर्त्तक ५. प्रामित्यक ६. आपमित्यक ६. सिंहनिका ८. अन्वजात ९. व्ययप्रत्यय १०. उपस्थाल, इन दसों बातों का ज्ञान अच्छी तरह से होना चाहिए।

---

[36] वही.

कोष्ठागाराध्यक्षः सीताराष्ट्रक्रयिमपरिवर्त्तकप्रामित्यकापमित्यकसिंहनिकान्यजाव्यय प्रत्यायोपस्थानान्युपलभेत् ॥[37] ये राजकीय कर थे।

१.राजकीय कर के रूप में एकत्रित्त धान्य को सीता तथा इसके अध्यक्ष को सीताध्यक्ष कहा जाता था।

२.राष्ट्र के कर के दस भेद थे- १. पिण्डकार गाँवों से वसूल किया जाने वाला राजकीय कर २. षड्भाग (राजा को दिया जाने वाला अन्न का छठा भाग) ३. सेनाभक्त (युद्धकाल में निर्धारित कर) ४. बलि (छठे भाग का अतिरिक्त कर) ५. कर (जलाशयों व जंगलों का कर) ६. उत्संग (राजकुमार के जन्मोत्सव पर दी जाने वाली भेंट) ७. पार्श्व (निश्चित कर के अतिरिक्त कर) ८. पारिहीणिक (गाय आदि के नुकसान पर दण्ड के रूप में प्राप्त धन) ९. औपायनिक (भेंट स्वरूप प्राप्त धन) १०. कौष्ठेयक (राजधन से बने हुए तालाबों तथा बगीचों का कर)[38]

३.क्रयिम- यह तीन प्रकार का था-

- धान्यमूलक (धान्य को बेचकर प्राप्त हुआ धन)
- कोशनिर्हार (धान्य देकर खरीदा हुआ धन)
- प्रयोग प्रत्यादान (ब्याज आदि से प्राप्त धन)

४. परिवर्त्तक कर में एक अनाज को दूसरे अनाज के रूप में बदला जाता था।

५. प्रामित्यक कर वह जिसमें मित्र से लिया गया धन वापस नहीं किया जाता था।

६. आपमित्यक में ब्याज सहित कर्ज वापस किया जाता था।

७. जीविकोपार्जन से सम्बन्धित कर सिंहनिका था । जैसे- कूट-पीसकर, गन्ना आदि को पेरकर, तिलों का तेल निकालकर, भेड़ों के बाल काटकर आदि।

८. नष्ट हुए तथा मूले हुए धान का नाम अन्यजात है।

---

[37] अर्थशास्त्र २/३/७१५ पृष्ठ सं० १५७

[38] वही,

९. लयप्रत्याय के तीन भेद हैं-

१.विक्षेपशेष- सेना के व्यय से बचा हुआ धन

२.व्याधिशेष- औषधालय से बचा हुआ धन

३.अन्तरारम्भशेष- दुर्ग आदि की मरम्म्त से बचा हुआ धन

१०. उपस्थान- सही माप-तौल के बाद अधिक दिया या लिया गया धन उपस्थान कहलाता है। जैसे- बाँट-तराजू की पंसधा से, मुट्ठी दो मुट्ठी दिया गया अधिक धन।

इसके अतिरिक्त धान्य स्नेह (घी, तेल, वसा और मज्जा), क्षार (गन्ने से बने राभ, गुड़, खाँद आदि) तथा लवण आदि से भी राजकीय कर प्राप्त होते हैं तथा इनकी उपज का आधा भाग आपत्तिकाल में जनपद की सुरक्षा के लिए राजा के द्वारा सुरक्षित रखा जाता था- *ततोऽर्धमादर्थं जानपदानां स्थापयेत् । अर्धमुपयुञ्जीत । नवेव धानवं शोधेयम् ॥*[39]

२.६ पण्याध्यक्ष विभाग-

कौटिल्य के समय वाणिज्य व्यापार जल व स्थल मार्ग से प्रारम्भ हो चुका था । यह व्यापार देश के भीतर के साथ साथ बाह्य विदेशों से भी प्रारम्भ हो गया था। कौटिल्य ने कहा कि वह माल पण्य था जो बाजार में बिक्री के लिए लाया जाता था । राज्य की ओर से सबसे बड़ा अधिकारी राजकीय व्यापार की देख-रेख करता था तथा व्यापार करने के लिए लाइसेंस देता था, वह पण्याध्यक्ष कहलाता था। वह राजकीय क्षेत्र में उत्पन्न पण के विक्रय की व्यवस्था करता था और व्यापारिक क्षेत्र में होने वाली आय के लिए सीधा राज्य के प्रति उत्तरदायी होता था। पण्याध्यक्ष स्थल तथा जल में पैदा होने वाले पण्य पदार्थों, उनके गुण-दोषों,विभिन्न देशों तथा समयों, जहाँ और जब वे पण्य उत्पन्न होते थे, उनके मूल्यों के अन्तर तथा उनकी लोकप्रियता एवं अप्रियता का पूरा विवरण रखता था । उसे यह पता भी रखना

[39] अर्थशास्त्र २/३१/१५ पृ.सं. १५९

पड़ता था कि किस काल और देश में पण्य को अधिक संग्रह् करें तथा कब और कहाँ उसे तुरन्त निकाल दें।[40]

पण्याध्यक्ष को यह सलाह् दी जाती थी कि विक्रेय वस्तु अधिक मात्रा में उपलब्ध है तो उसे अपने अधीन कर लें और प्रारम्भ में उसका मूल्य बढ़ाकर लाभ कमा लें यानि उत्पादन मूल्यप्राप्त कर लें, उसके पश्चात् दाम गिराकर बेच दें-

यच्च पण्यं प्रचुरं स्यात्तदेकीकृत्यार्घमारोपयेत्। प्राप्तेऽर्घे वार्घान्तिरं कारयेत्॥[41]

यहाँ अर्थशास्त्र में अर्घ व मूल्य के अन्तर को अर्थशास्त्र ने ग्रहण कर लिया था । मूल्य का अर्थ बाजार भाव था और अर्घ का अर्थ उत्पादन लागत खर्च था।

कौटिल्य ने कहा कि प्रजा सर्वोपरि है, प्रजा का शोषण करके राज्य को लाभ नहीं कमाना चाहिए।

स्थूलमपि च लाभं प्रजानामौपघातिकं वारयेत्। [42]

तथा व्यापारियों को यह भी निर्देश दिया गया कि प्रतिस्पर्धा कितनी भी हो परन्तु उनको एक ही स्थान पर एक ही मूल्य पर बेचना चाहिए । यदि मूल्य में कुछ कमी हो तो व्यापारी स्वयं पूरा करे-

बहुमुखं वा राजपण्यं वैदेहकाः कृतार्घं विक्रीणीरन् । छेदानुरूपं च वैधरणं दद्युः। [43]

कौटिल्य ने कहा कि राज्य को आय लाभ तभी प्राप्त होगा जब विदेशी माल भारत में आए व यहाँ का माल बाहर जाए । उन्होंने विदेशी माल को प्रोत्साहन देने के लिए नाव का किराया व (सार्थवाह) कारवाँ को संरक्षण का व्यय हो सके तो न लिया जाए तथा विदेशी व्यापारियों

---

[40] अर्थशास्त्र २/३२/१६ पृष्ठ सं० १६४

[41] वही.

[42] वही.

[43] अर्थशास्त्र २/३२/१६ पृष्ठ सं० १६५.

से कर्ज की अदायगी सख़्ती से वसूल किया जाए । विदेशी व्यापरियों से विवाद नहीं करना चाहिए । यदि हो तो शीघ्र समाधान कर दो-

परभूमिजं पण्यमनुग्रहेणावहयेत्। नाविकसार्थवाहेभ्यश्च परिहारमायतिक्षमं दद्यात्। अनभियोगश्चार्थिष्वागन्तूनामन्यत्र सम्भोपकारिभ्यः।[44]

इस तरह विदेशी व्यापारियों को प्रोत्साहन देकर कौटिल्य भारत को पूरे संसार में व्यापक केन्द्र बनाने का स्वप्न देखते थे । इसी नीति का अनुपालन आज भारत दक्षिणपूर्वी एशियाई देशों के साथ कर रहा है। व्यापार के सम्बन्ध में विचार करते समय बार- बार सुरक्षा व संरक्षण की बात करते हैं क्योंकि उस समय दस्युओं का बाहुल्य था। अत: कौटिल्य ने यह सलाह दी कि जंगल तथा सीमा के रक्षकों से नगरप्रधान और राष्ट्र के प्रतिष्ठित पुरुषों से घनिष्ठता बढ़ानी चाहिए जिससे व्यापार में कोई बाधा न आवे–

अटव्यन्तपालपुराष्ट्रमुख्यैश्च प्रतिसंसर्ग गच्छेदनुग्रहार्थम्।[45]

कौटिल्य ने समुद्री मार्ग की अपेक्षा महानदियों का मार्ग व्यापार के लिए अधिक लाभदायक माना है क्योंकि इसमें देश-देशान्तरों के आचार-विचार का विशेष ध्यान रखा जाता था। व्यापार का मुख्य उद्देश्य लाभ कमाना तथा घाटे से दूर रखना था।–

नदीपथे च विज्ञाय व्यवहारं व चरित्रतः । यतो लाभस्ततो गच्छेदलाभं परिवर्जयेत्॥[46]

२.७ कुप्याध्यक्ष विभाग-

कौटिल्य कुप्य या वन विभाग के विषय में कहते हैं कि कुप्याध्यक्ष को इसकी रक्षा करनी चाहिए क्योंकि इससे औषधियों की प्राप्ति होती है। इसके अतिरिक्त वनों में पाए जाने वाले ऐसे वृक्षों की चर्चा है, जिससे लोगों के जीविकोपार्जन के साथ-साथ राज्य की आय भी प्राप्त होती है । वनविभाग सर्वोत्तम लकड़ी वाले वृक्षो में शाक (सागून), निनिश (नैहुँआ), धन्वस

---

44 अर्थशास्त्र २/३२/१६ पृष्ठ सं० १६५.

45 वही.

46 अर्थशास्त्र २/३३/१६ पृष्ठ सं० १६६

(पीपल), अर्जुन, मधुक (महुआ), तिलक (फरास), साल, शिंशपा (शीशम), खादिर (खैर), सरल (देवदारु), ताल (ताड़), सर्ज (साल), अश्वकर्ण (बड़ा साल), सोमवल्क (सफेद खैर), कश (बबूल), आमप्रियक (कदेव), घव (गूलर) आदि हैं।

कुप्यवर्गः शकतिनिशधन्वनार्जुनमधूकतिलकसालशिंश पारिमेदराजादनशिरीषखदिरसरातालसर्जाश्वकर्ण सोमवल्कशाभ्रप्रियकधवादिः सारदारुवर्गः।[47]

कन्दमूल (निदारी, सूरण), मूल (अनंतराज, कामराज, खस आदि) और फल (आँवला, हर्रा, बहेड़ा) आदि ये सब औषधियाँ हैं - *कन्दमूलफलादिरौषधवर्गः ।*[48]

कुप्य को यह निर्देश दिया गया था कि व्यापार सम्बन्धी जो भी कार्य करे, वह राजा की इच्छा या रुचि के अनुसार ही करें–

इच्छामारम्भनिष्पत्तिं प्रयोगं व्याजमुद्दयम् । अव्ययौ च जानीयात् कुप्यानामायुधेश्वरः॥[49]

२.८ पौतवाध्यक्ष विभाग-

कौटिल्य ने राज्य में मापतौल के साधनों में एकरूपता के लिए तथा जनता को सुरक्षा प्रदान करने के लिए पौतवाध्यक्ष की नियुक्ति का विधान किया है । इसके द्वारा मापतौल के साधन का निर्माण व निरीक्षण किया जाता था ।

कौटिल्य का मत है कि प्रत्येक चार मास के बाद कम से कम एक बार मापतौल के साधनों का निरीक्षण पौतवाध्यक्ष को अवश्य करना चाहिए । जो व्यक्ति मापतौल के साधनों का निरीक्षण नहीं कराते थे, उन्हें सवा सत्ताईस पण का जुर्माना दिया जाता था । मापतौल साधनों की इस निरीक्षण व्यवस्था के लिए व्यापारियों को प्रतिदिन के हिसाब से एक कांकणी (सिक्का विशेष) निरीक्षण के रूप में देना पड़ता था-

---

47 *अर्थशास्त्र,* २/३३/१७, पृष्ठ सं० १६७ .

48 *वही.*

49 *अर्थशास्त्र,* २/३४/१८, पृष्ठ सं० १७३ .

चातुर्मासिकं प्रातिवेधनिकं कारयेत् । अप्रतिविद्धस्यात्ययः सपादः सप्तविंशतिपणः । प्रातिवेधनिकं काकणिकमहरहः पौतवाध्यक्षाय दद्युः ।[50]

२.९ शुल्काध्यक्ष विभाग-

राज्य ने शुल्क चुंगी के रूप में अपनी आय का एक विश्वसनीय स्रोत निकाल लिया था । कौटिल्य ने जिस विस्तार तथा दृढ़ता के साथ इसका प्रतिपादन किया है इससे प्रतीत होता है कि बाद में राजतन्त्रों ने इस स्रोत का जमकर शोषण किया था और शुल्काध्यक्ष जिसकी देखरेख में राज्य को शुल्क मिलता था, राज्य का वैसा ही प्रभावशाली अधिकारी माना जाता था जैसा समाहर्त्ता ।[51]

नगरों के प्रमुख प्रवेश द्वार पर पूर्व तथा उत्तरदिशा में शुल्कशाला बनवायी जाती थी तथा उसपर एक पताका लगाया जाता था ताकि शुल्क देने वाले दूर से देख लें ।[52] वहाँ शुल्क लेने वाले दो-चार कर्मचारी बैठे रहते थे जो व्यापरियों के नाम, जाति, निवास स्थान, माल का विवरण और उस पर कहाँ-कहाँ मुहर लगी है, इसका विवरण लिखते थे-

शुल्कादयिनश्चत्वारः पञ्च वा सार्थोपयातान् वणिजो लिखेयुः के कुतस्त्याः कियत्पण्याः क्व चाभिज्ञानमुद्रा वा कृतेति ।[53]

उस समय व्यापारियों पर बहुत कड़े नियम थे। जिससे राज्य में अराजकता व पैसों का गबन न हो व राजकोष में धन की प्राप्ति हो। जैसे- यदि व्यापारी ने अपने माल पर मुहर न लगवाई हो तो वह चुंगी क दुगुना दण्ड देता था । जो नकली मुहर लगवाता था, वह चुंगी का आठ गुना दण्ड देता था, जो लोग लगी मुहर को तोड़ देते थे उन्हें तीन घड़ी (तीन घड़ी=एक घण्टा) ऐसे स्थान पर बैठाया जाता था कि जहाँ पर आने जाने वाले सभी अपराधी उसके

---

50 *अर्थशास्त्र,* २/३५/१९, पृष्ठ सं० १७९ .

51 कौटिल्यकालीन भारत, आचार्य दीपंकर, पृ. सं. १३२.

52 अर्थशास्त्र २/३३/२१, पृ. सं. १८५.

53 अर्थशास्त्र २/३३/२१, पृ. सं. १८५.

व्यापार को जाने तथा जो मुहर को बदल देने या माला बदल देते थे उनसे सवा पण दण्द लिया जाता था-

अमुद्राणामत्ययो देयद्विगुण:। कूटमुद्राणां शुल्काष्टगुणो दण्ड:। भिन्नमुद्राणामत्ययो घटिका: स्थाने स्थानम् । राजमुद्रापरिवर्तने नावकृते सपादपणिकं वहनं दापयेत् ॥[54]

चुंगीघर के पास ही व्यापरियों की बोली लगा करती थी । इस प्रकार चुंगीघर स्वयं में व्यापार केन्द्र भी था । यदि बोली में अधिक दाम लग जाते थे तो फालतू पैसा राजकोष में चला जाता था ।[55] आज की भाँति व्यापारी उस समय भी चुंगी से सबसे अधिक घृणा करते थे एवं उससे बचने का हर समय प्रयास करते थे । परन्तु ऐसा होने पर व्यापारी से आठ गुना शुल्क वसूल किया जाता था। [56]

चुंगी के मामले में यद्यपि राजतन्त्र अधिक कठोर था और निर्दयता से शुल्क का संग्रह करता था । परन्तु फिर भी निम्न अवसरों तथा पण्यों पर शुल्क नहीं लिया जाता था । विवाह सम्बन्धी सामग्री, यज्ञोपवीत, यज्ञकार्य, देवपूजा, प्रसवकार्य , मुण्डन, व्रत और इसी प्रकार के अन्य धार्मिक कार्यकलाप । परन्तु कोई भी व्यक्ति इनका झूठा नाम लेकर शुल्क से बचने का प्रयत्न करता था तो उसे चोरी का दण्ड भुगतना पड़ता था ।[57] विदेशों से आने वाले व्यापारियों के बहुमूल्य सामान पर एक मुहर लगाकर और एक सूची बनाकर अन्तपाल चुंगी अधिकारियों के पास भेजता था। इन व्यापारियों के कारवाँ (सार्थवाहों) में राजा के गुप्तचर रहते थे जो व्यापारियों की सम्पूर्ण आर्थिक स्थिति का बोध रखते थे।[58]

परन्तु आदर्श राजा आय में दिलचस्पी रखते हुए भी ऐसे को आयात व उस पर चुंगे नहीं लगाई जाती थी, जिससे प्रजा की हानि होती हो तथा उनके नैतिक मनोबल का पतन होता हो। ऐसे पण्य के आयात पर बल दिया जाता था जिससे राज्य की समृद्धि होती थी। खाद्य-

---

54 अर्थशास्त्र २/३३/२१, पृ. सं. १८५

55 वही.

56 वही.

57 अर्थशास्त्र २/३७/२१, पृ. सं. १८७.

58 वही.

पदार्थों के उन्नत बीजों का आयात करने का राजा प्रोत्साहन देता था। ऐसे सामानों पर शुल्क भी लिया जाता था।–

राष्ट्रपीडाकरं भाण्डं मुच्छिद्यदिफलं च यत्।

मढोपकारमुच्छुल्कं कुर्याद् बीजं तु दुर्लभम् ॥[59]

२.९.१ आयात-निर्यात व आन्तरिक व्यापार तथा कर वसूली के नियम-

व्यापार आमतौर पर तीन प्रकार का समझा जाता था- बाह्य, आभ्यान्तर और आतिथ्य। इन्हीं के आधार पर वसूल किया जाता था । अपने राज्य में उत्पन्न पण्य को वाह्य कहते थे तथा राजधानी तथा दुर्ग में उत्पन्न पण्य को आभ्यान्तर कहते थे । विदेशों से आयातित पण्य आतिथ्य कहलाता था । इनके दो भाग हैं- १.निष्क्राम्य २.प्रवेश्य। निर्यात किए गए माल पर लगाई गई चुंगी निष्क्राम्य तथा आयातित माल पर लगाई गई चुंगी को प्रवेश्य कहा जाता था-

शुल्क व्यवहारो बाह्याभ्यान्तरं चातिथ्यम्। निष्क्राम्यं प्रवेश्यञ्च शुल्कम्॥[60]

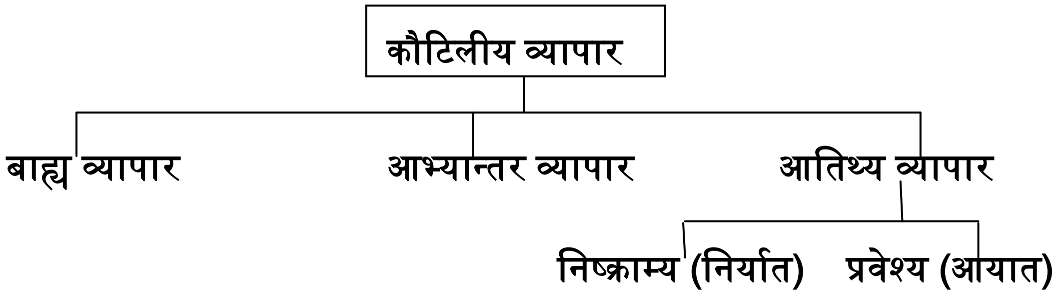

रेखा-चित्र संख्या: २.७

शुल्क (चुंगी) की दरें प्रत्येक प्रकार के पण्य एवं व्यापार के लिए भिन्न-भिन्न थीं । बाहर जाने वाले पण्यों पर मूल्य का पाँचवा भाग प्रवेश शुल्क लिया जाता था । प्रत्येक पण्य के मूल्य के आधार पर उसकी सूची बनाकर उसका प्रवेश शुल्क लेने की व्यवस्था थी। राजधानी में

---

[59] अर्थशास्त्र २/३३/२१, पृ. सं. १८८.

[60] अर्थशास्त्र २/३८/२२, पृ. सं. १८९

विदेशी माल के प्रवेश पर विशेष शुल्क लेने की व्यवस्था थी और विदेशी माल के मुकाबले स्वदेशी माल को प्रोत्साहन दिया जाता था–

द्वारादेयं शुल्कं पञ्चभागम्, आनुग्राहिके वा यथा देशोपकारं स्थापयेत् । जातिभूमिषु च पण्या नामविक्रय:॥[61]

जिन प्रदेशों में जो चीजें पैदा होती थीं, उसे वहीं नहीं बेचना चाहिए । अत: फायदे के लिए दूसरे देशों में बेचना चाहिए । परन्तु खानों से निकले हुए कच्चे माल के बेचने तथा खरीदने पर कठोर प्रतिबन्ध लगा हुआ था । जिस खेत बाग या स्थान में जो सामान पैदा होता था उसको वहीं बेचने पर कड़ा प्रतिबन्ध था क्योंकि इससे घाटा होता है ।[62]

किसी भी स्थिति में चुंगी का चुराना राज्य के प्रति घोर अपराध था । इस तरह से राजा प्रत्येक नए-पुराने पदार्थों पर कर लगाता था और उनमें जहाँ नुकसान की सम्भावना होती थी, वहाँ दण्ड लगाता था-

अतो नवपुराणानां देशजातिचरित्रत:। पण्यानां स्थापयेच्छुल्कमत्ययं चावकारत:॥[63]

२.१० सूत्राध्यक्ष विभाग-

राजा के उद्योग एवं व्यापार दोनों के लिए राजकीय क्षेत्र में वस्त्र उद्योग चलाया जाता था और इसके लिए पृथक राजकीय विभाग था, जिसका मुख्य अधिकारी सूत्राध्यक्ष होता था।

सूत कातने का आमतौर पर काम स्त्रियाँ करती थीं । वे राजकीय उद्योगशालाओं के अतिरिक्त अपने घरों पर भी यह कार्य करती थीं । विधवा, विकलाङ्ग स्त्री जिसका विवाह होना कठिन हो, कन्याओं, सन्यासिनों, सजाप्राप्त कर चुकी स्त्रियों, वेश्याओं की वृद्ध माताओं, बूढ़ी दासियाँ और मन्दिर की दासियाँ सूत कातने का काम करती थीं-

---

[61] अर्थशास्त्र २/३३/२१, पृ. सं. १९०.

[62] अर्थशास्त्र २/३३/२१, पृ. सं. १८८.

[63] अर्थशास्त्र २/३३/२१, पृ. सं. १९१.

विधवान्यङ्गाकन्याप्रजिनादण्डाप्रतिकारिणीभी रूपामिवामातृकाभिर्वृद्धराजदासिभिः व्युपरतोपस्थानदेवदासिभिश्च कर्तयेत् ॥[64]

सूत की बारीकि, मोटाई तथा परिमाण को देखकर इनका वेतन तय किया जाता था। विशेष कार्य करने वाली स्त्रियों को प्रोत्साहन देने के लिए तेल, उबटन आदि शारीरिक श्रृंगार से समबन्धित पुरस्कार दिया जाता था। यह काम दैनिक वेतन के आधार पर तय होता था। कम काम करने पर वेतन की कटौती की जाती थी। कते हुए सूत से ही राजकीय कर्मान्तों में वस्त्र तथा कवच आदि का निर्माण कराया जाता था।

जो स्त्रियाँ घर से न निकलती हों, जिनके पति विदेश गए हों, विधवा हों, विकलांग एवं अविवाहित होती थी तथा आत्मनिर्भर रहना चाहती हों, ऐसी स्त्रियों के पास दासियों द्वारा रूई, कपास आदि भेजकर घर पर ही सूत कतवाया जाता था।[65]

वह घर पर कते हुए सूत स्वयं सूत्रशाला में लेकर आती थी या फिर दासियों द्वारा भिजवाती थीं तथा उन्हें सूत के हिसाब से वेतन मिलता था। जो सूत्रशाला में आकर काम लेती थीं। उन्हें अंधेरे में ही प्रात:काल का काम दे दिया जाता था और दीपक के लिए उतना ही तेल दिया जाता था, जितने में धागा भर दिख सके। जो कर्मचारी इनका मुख देखता था तथा आवश्यक बातें करता था, उसे पूर्णसाहस दण्ड दिया जाता था। समय पर वेतन न देने तथा काम न करने पर भी वेतन दे देने पर मध्यम साहस दण्ड दिया जाता था-

स्वयमागच्छन्तीनां वा सूत्रशालां प्रत्युषसि भाण्डवेतनविनिमयं कारयेत्। सूत्रपरीक्षार्थमात्रः प्रदापः। स्त्रिया मुखसन्दर्शनेऽन्यकार्यसम्भाषायां वा पूर्वः साहसदण्डः। वेतनकालातिपातने मध्यमः, अकृतकर्मवेतनप्रदाने च।[66]

---

64 *अर्थशास्त्र* २/३९/२३, पृ. सं. १९२

65 *कौटिल्यकालीन भारत*, आचार्य दीपंकर, पृ. सं. १३४

66 *अर्थशास्त्र*, २/३९/२३, पृ.सं., १९३.

जो स्त्री वेतन लेकर काम नहीं करती थी, उसका अँगूठा कटवा दिया जाता था और यही दण्ड उसको भी दिया जाता था, जो सरकारी माल खा जाती थी या अपहरण कर लेती या लेकर भाग जाती थी। प्रत्येक कर्मचारियों को भी अपराध के अनुसार दण्ड दिया जाता था-

गृहीत्वा वेतनं कर्माकुर्वत्याः अङ्गुष्ठसन्दंशनं दापयेत् । भक्षितापहृतावस्कन्दितानां च । वेतनेषु च कर्मकराणामापराधतो दण्डः ।[67]

इस प्रकार कौटिल्य कालीन भारत में स्त्रियों को भी पुरुषों के समान काम करने का अधिकार लगभग प्राप्त हो चुका था, परन्तु गलती करने पर दण्ड की भी व्यवस्था थी।

२.११ सीताध्यक्ष विभाग-

तत्कालीन समय में खेती आजीविका का मुख्य साधन थी, फिर भी उसके विकास के लिए राजकीय प्रयास अनिवार्य थे। सभी प्रकार के अन्न-पुष्प, फल, शाक-कन्द, लताओं से उत्पन्न होने वाले उत्पाद, जूट, कपास आदि की उपज कृषि के अन्तर्गत मानी गई है तथा इसका अध्यक्ष सीताध्यक्ष कहलाता है और उसके सहायक अधिकारियों को कृषिशास्त्र, पैमाइश तथा वनस्पतिशास्त्र की पूर्ण जानकारी होना आवश्यक था-

सीताध्यक्ष: कृषितन्त्रशुल्कवृक्षायुर्वेदज्ञस्तज्ज्ञसखो वा सर्वधान्यपुष्पफलशाककन्दमूलवालिक्य क्षौमकार्पासबीजानि यथाकालं गृह्णीयात् ॥[68]

राज्य का समस्त कृषि भूमि पर नियन्त्रण था, परन्तु सीताध्यक्ष की देख-रेख में होता था। वह अपने पास सभी प्रकार के बीज भण्डार रखता था। जैसे- सक्षम कारावास प्राप्त कैदी, मजदूरी पर कार्य करने वाले श्रमिक-दास आदि रखता था।[69]

---

[67] *अर्थशास्त्र*, २/३९/२३, पृ. सं. १९३.

[68] *अर्थशास्त्र*, २/४०/२४, पृ. सं. १९५.

[69] वही.

२.११.१ कृषि क्षेत्र-

कौटिल्य ने बताया कि अन्नों की उत्पत्ति सूर्य तथा वर्षा के अधीन है । उन्होंने यह निर्देश किया कि वर्षा के अनुपात से ही कृषि बोनी चाहिए तथा विभिन्न प्रकार का वर्णन किया है कि किस समय कौन-सा अन्न बोना चाहिए? कौटिल्य के अनुसार धान, ज्वारादि, कोदो, तिल, कांगनी तथा लोभिया आदि अन्न वर्षा के पूर्व ही बो देना चाहिए । मूँग, उड़द, सेम आदि को वर्षाकाल के मध्य, सरसों आदि की बुआई वर्षाकाल की समाप्ति पर करनी चाहिए। इन सभी अन्नों को ऋतु के अनुसार, जैसा उचित हो बोना चाहिए ।[70]

उपर्युक्त फसलों में कौटिल्य ने धान, गेहूँ आदि को उत्तम फसल माना है । कदली आदि की फसल को मध्यम कोटि की तथा गन्ने की फसल को सबसे निकृष्ट माना है-

शाल्यादि ज्येष्ठम्। षण्डो मध्यमः। इक्षुप्रत्यवरः इक्षवो हि बह्वाबाधा व्ययग्राहिणश्च॥[71]

यह सिद्धान्त आज भी प्रचलित है। गन्ने की बुआई में धान व गेहूँ की अपेक्षा अधिक लागत, समय व अधिक देखरेख की आवश्यकता पड़ती है।

कौटिल्य के अनुसार नदी से सटी हुई भूमि जिस पर पानी की लहरों का फेन पहुँच जाता है, लताओं से उत्पन्न होने वाली फसलों के लिए उत्तम है । यही जमीन पीपल व ईख आदि के लिए उपयुक्त है । नदी का कछारों व किनारों की जमीन का पेठा, कद्दू, ककड़ी तथा तरबूज आदि बोने के लिए उपयुक्त है । शाक तथा मूली आदि की खेती के लिए कुऐ के निकट की भूमि, सब्जियों के लिए तालाब, पोखर आदि के निकट शीतलयुक्त भूमि, जिन खेतों में पानी सेतु आदि के द्वारा रोका जाता है । वह खीरा, खस, शकरकन्दी आदि के लिए उपयुक्त है ।[72] वर्तमान समय में भी कौटिल्य का यह कथन सटीक है जो सूक्ष्म निरीक्षण तथा वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित है ।

---

70 अर्थशास्त्र २/४०/२४, पृ. सं. १९६.

71 अर्थशास्त्र २/४०/२४, पृ. सं. १९७.

72 अर्थशास्त्र २/४०/२४, पृ. सं. १९७-९८.

२.११.२ बीजों का संस्कार-

अच्छी फसल को बोने के लिए बीजों को पहले संस्कारित किया जाता था । प्राय: कृषक इसमें किसी प्रकार की शिथिलता नहीं करते थे। कौटिल्य विभिन्न धान्य-बीजों का धूप-शीत-तुषार-गोबर-सेवन-मधु-शूकर-वसा-हड्डी-घृत-सुवर्णफल मंजादि के द्वारा तथा अंकुरण होने पर आखे के दूध द्वारा संस्कार करने का विधान प्रतिपादित किया है ।[73]

आज यह वैज्ञानिक सत्य सिद्ध है कि दीमक, चींटी आदि के द्वारा नष्ट न हो जाए, इसके लिए बीजों को जेनेटिक मोडीफाई किया जाता है।

बीजों के संस्कार के अतिरिक्त खेतों में सर्प के निवारण के लिए कौटिल्य ने कहा है कि सर्प की केंचुली और बिनौले को एक साथ मिला दिया जाए, जहाँ तक उसका धुआँ फैलेगा वहाँ तक कोई भी साँप नहीं आ सकता तथा अनाजों की समृद्धि के लिए यह मन्त्र पढ़ना चाहिए-

प्रजापतये काश्यपाय देवाय नम: सदा । सीता मे ऋध्यतां देवी बीजेषु च धनेषु च॥[74]

२.११.३ सिंचाई व्यवस्था-

कौटिल्य ने सिंचाई के साधनों का विशद वर्णन किया है । कौटिल्य ने नदी, तालाब, सरोवर, कुऐ व वर्षा से प्राप्त जल आदि को सिंचाई का साधन माना है । प्राकृतिक वर्षा के अतिरिक्त व्यक्तिगत प्रयत्नों से भी सिंचन किया जाता था । भूमि पर बाँध बनाकर यन्त्रों से सिंचाई की जाती थी।

प्राचीन काल में वर्षा का ग्रहों तथा नक्षत्रों पर अनुमान किया जाता था । यदि बृहस्पति मेष आदि राशियों पर स्थित होकर वृष आदि राशियों पर संचरण करे, मृगशिरा आदि में भारी मात्रा में तुषार पड़े तथा शुक्र का उदय एवं अस्त तथा आषाढ़ महीने की पंचमी आदि नौ तिथियों में सूर्य के चारों संचार तथा कुण्डलादि के कारण वह धुंधला सा हो तो वर्षा का

---

[73] अर्थशास्त्र २/४०/२४, पृ. सं. १९८.

[74] वही.

अच्छा योग समझा जाता था। बृहस्पति को धान्य-वृद्धि का कारण माना जाता था और शुक्र से वृष्टि सम्भव मानी जाती थी–

सूर्याद् बीजसिद्धि: । बृहस्पते शस्यानां स्तम्बकरिता । शुक्राद् वृष्टिरिति॥[75]

२.११.४ खलिहानों की व्यवस्था-

कौटिल्य के अनुसार खलिहान ऊँचे स्थानों पर होना चाहिए तथा काटा हुआ अन्न रखने की जगह तथा दाँई लेने के लिए मण्डल पास में होना चाहिए। वहाँ पानी रखना चाहिए व आग पास में नहीं जलानी चाहिए। आज किसान इस सिद्धान्त का अनुसरण करते हैं, भले ही उनकों कौटिल्य का यह सिद्धान्त न पता हो–

खलस्य प्रकरान् कुर्यान्मण्डलान्ते समाश्रितान्। अनग्निका: सोदकाश्च खले स्यु: परिक्रर्मिण:॥[76]

२.१२ सुराध्यक्ष विभाग-

सुरा यानि आबकारी विभाग से भी राज्य को आय की प्राप्ति होती थी। राज्य की ओर से इस विभाग पर कड़े नियम लागू थे। सुराध्यक्ष दुर्ग, जनपद अथवा छावनी आदि में व्यापार का प्रबन्ध था तथा यह ठेके पर दिया जाता था। यह शराब ठेके पर ही बिकती थी। अन्य स्थान पर बेचने या खरीदने पर ६०० पण का जुर्माना लगता था। शराब व शराबी को गाँव से बाहर व किसी के घर जाने की अनुमति नहीं थी क्योंकि वे राजकीय कर्मचारियों की हानि करने लगेंगे, दूसरा आर्य लोग अपनी मर्यादा भंग कर सकते तथा तीसरे में तेज मिजाज सैनिक हथियारों का प्रयोग कर सकते हैं।[77]

सुविदित लोगों को शराब को घर ले जाने की आदत थी और सभी मदिरालय में आकर शराब पीते थे। शराब के नशे में लोगों के जेवर, वस्त्र, नकदी का गुप्तचर ध्यान दें। यदि किसी का

---

[75] *अर्थशास्त्र* २/४०/२४, पृ. सं. १९६.

[76] *अर्थशास्त्र* २/४०/२४, पृ. सं. १९९.

[77] *अर्थशास्त्र* २/४१/२५, पृ. सं. २००.

भी गायब हो जाता था, तो ठेकेदार को उतनी ही लागत का जुर्माना देता था । इस तरह शराबी व ठेकेदार दोनों पर नियन्त्रण था।

शराब कई प्रकार की थी- १.मेदक २.प्रसन्ना ३.आसव ४.अरिष्ट ५. मैरेय ६. मधु

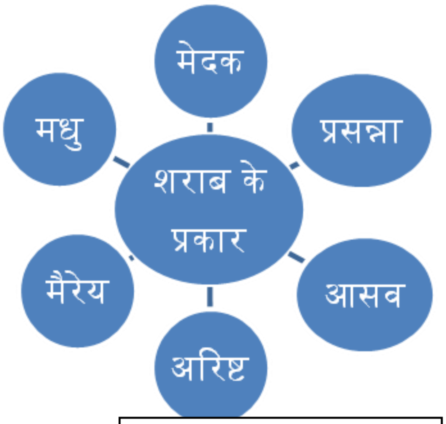

रेखा-चित्र संख्या: २.८

शराब के निर्माण में जल, चावल, सुराबीज (किण्व), पुत्रक वृक्ष की छाल, कैषफल का सार, शहद आदि का प्रयोग किया जाता था । शराब अच्छी व घटिया दोनों किस्म की थी । परन्तु ठेकेदारों को अच्छी शराब बेचने की विशेष इजाजत थी।

सुरा शराब से उत्कृष्ट मानी जाती थी । सुरा के चार भेद थे– १.सुहकार सुरा (साधारण शराब में आम का रस या तेल डालकर बनती थी) २. रसोत्तरा (गुड़ की चाशनी से बनाई जाती थी) ३.बीजोत्तरा (बीजबन्ध द्रव्यों से बनाई जाती है), इसी को महासुरा भी कहते हैं। ४. संभारिकी (अधिक मसाले छोड़कर बनाई जाती थी) -

सहकारसुरा रसोत्तरा बीजोत्तरा वा महासुरा सम्भारिकी वा॥[78]

[78] अर्थशास्त्र २/४१/२५, पृ. सं. २०३

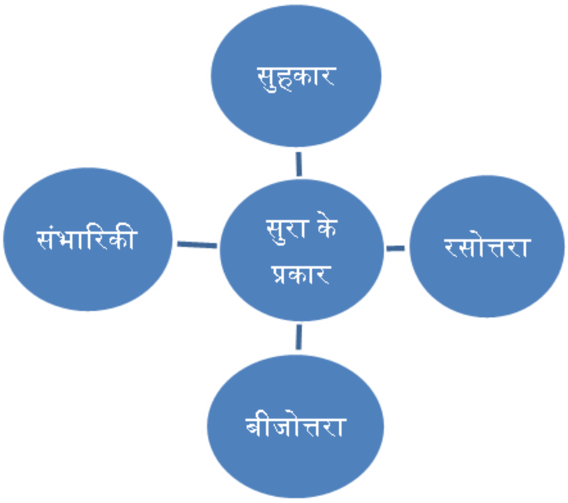

रेखा-चित्र संख्या: २.९

सुरा को बनाने व उसका मसाला तैयार करने के लिए स्त्रियों व बालकों को नियुक्त किया जाता था ताकि वे आत्मनिर्भर बन सकें– *सुराकिण्वविचयम् स्त्रियो बालाश्च कुर्यु:।।*[79]

उत्सवों के समय, मित्र-बन्धुओं के समाज में तथा तीर्थ-यात्रा में तीन दिन तक सुरा पीने की इजाजत थी । यदि कोई बिना आज्ञा के पीता था तो उसे उत्सव समाप्त होने पर यथोचित दण्ड दिया जाता था । यदि कोई बिना राजाज्ञा के सुरा पीता था तो सुराओं का ५% शुल्क अदा करना पड़ता था ।[80]

इस शुल्क अदायगी के अतिरिक्त सुराध्यक्ष दैनिक बिक्री और तोल-माप की उचित जानकारी प्राप्त कर सोलहवाँ हिस्सा और नकद आमदनी पर बीसवाँ हिस्सा टैक्स वसूल करता था जो सीधे राजकोष में जमा होता था । टैक्स वसूल करते समय उनके साथ सदा ही उचित व्यवहार, बर्ताव बनाए रखना पड़ता था-

अन्हश्च विक्रयं व्याजीं ज्ञात्वा मानहिरण्ययो: । तथा वैधरणं कुर्यादुचितं चानुवर्तयेत् ।।[81]

---

79 अर्थशास्त्र २/४१/२५, पृ. सं. २०४

80 वही.

81 अर्थशास्त्र २/४१/२५, पृ. सं. २०४.

२.१३ गणिकाध्यक्ष विभाग-

वेश्यालय से भी राज्य को कर प्राप्त होता था। अत: उस समय वेश्यालय को कानूनी मान्यता प्राप्त थी। गणिकाध्यक्ष रूप-यौवन से सम्पन्न एवं गायन-वादन में निपुण स्त्री को, चाहे वह वेश्या कुल से सम्बन्धित हो या न हो, एक हजार पण देकर नियुक्त करता था। इस एक सहस्र पण में से आधा उसके परिवार को दिया जाता था-

गणिकाध्यक्षो गणिकान्वयामगणिकान्वयां वा रूपयौवनशिल्पसम्पन्ना सहस्रेण गणिकां कारयेत्। कुटुम्बार्धेन प्रतिगणिकाम्॥[82]

वेश्याओं की तीन श्रेणियाँ थीं-

१.कनिष्ठ- जिसका सौन्दर्य व सजावट कम थी तथा वेतन एक हजार पण था। यह छत्र तथा इत्रदान लेकर रहती थी।

२.मध्यम- सौन्दर्य एवं सजावट में कनिष्ठ से अच्छी थी तथा वेतन दो हजार पण था। पालकी के साथ रहती थी।

३.**उत्तम-** जो हर बात में चतुर होती थी, वह उत्तम वेश्या कहलाती थी तथा इसका वेतन तीन हजार पण था। यह राजसिंहासन तथा रथ आदि के निकट रहकर राजा की परिचर्या करती थी–

सौभाग्यालङ्कारवृद्धया सहस्रेण वारं कनिष्ठं मध्यमुत्तमं वारोपयेत् । छत्रभृङ्गारव्यजन शिबिका पीठिकारथेषु च विशेषार्थम् ॥[83]

अगर गणिकाएँ राजवृत्ति से मुक्त होना चाहती थीं तो वह राजा को चौबीस हजार पण देकर स्वतन्त्र हो सकती थी। वेश्यापुत्र के लिए बारह हजार पण था। यदि वह मुक्त होने में असमर्थ था तो राजा के पास आठ वर्ष तक सेवा करके मुक्त हो सकता था।[84]

---

82 अर्थशास्त्र २/४३/२७, पृ. सं. २०७.

83 अर्थशास्त्र २/४३/२७, पृ. सं. २०७.

वेश्यालय के अतिरिक्त बाहर से आयी हुई नट मण्डली से भी राज्य को आय प्राप्त होती थी। वह प्रत्येक खेल पर पाँच पण राजा को कर के रूप में अदा करे।

गणिकाध्यक्ष वेश्याओं के भोगधन (सम्भोग से प्राप्त हुई आमदनी), माता से मिला धन (दायभाग), सम्भोग के अतिरिक्त आमदनी (आय) और भावी प्रभाव (मायती) आदि को रजिस्टर में दर्ज करता था और उन्हें अधिक खर्च करने से रोकता था-

भोगं दायभागं व्ययमायतिं च गणिकाया निबन्धयेत्। अति व्ययकर्म च वारयेत्॥[85]

रूप से जीविका कमाने वाली वेश्या अपनी मासिक आमदनी के हिसाब से दो दिन की कमाई कर के रूप में राजा को देती थी।

राजा नट-नर्तक आदि पुरुषों को तथा अनेक भाषाऐं बोलने वाली तथा अनेक प्रकार के वेश बनाने वाली उनकी स्त्रियों को शत्रु के गुप्तचरों का वध करने का अथवा उनको विषय-वासनाओं में फँसाने के लिए नियुक्त किया जाता था–

संज्ञाभाषन्तरज्ञाश्च स्त्रियस्तेषामनात्मसु। चारघातप्रमादार्थं प्रयोज्या बन्धुवाहना:॥[86]

२.१४ नावध्यक्ष विभाग-

यह उपज जहाजरानी विभागाध्यक्ष के समान कार्य करता था। कौटिल्य के समय व्यापार तीव्र गति से प्रारम्भ हो चुका था । इसके लिए व्यापार-मार्गों का विकास एवं उनकी सर्वोपरि समझी जाती थी। भारत का स्थलमार्ग से जहाँ उत्तरापथ में ईरान एवं यूनान (यवन देश) तक व्यापार था, वहाँ समुद्र-मार्ग से पूरे दक्षिणपूर्वी एशिया के देशों के साथ गहरा आर्थिक सम्बन्ध था ।[87]

---

[84] अर्थशास्त्र २/४३/२७, पृ. सं. २०८.

[85] अर्थशास्त्र २/४३/२७, पृ. सं. २०७.

[86] अर्थशास्त्र २/४३/२७ पृ. सं. २११.

[87] कौटिल्यकालीन भारत, आचार्य दीपंकर, पृ. सं. १२१

राज्य की ओर से समुद्र तटीय महानदियों के व्यापारिक मार्गों, विशाल सरोवरों, मध्य सरोवरों, झीलों, तालाबों तथा गाँवे के छोटे-छोटे जलीय मार्गों की स्थापना की जाती थी। जिसका अध्यक्ष नौकाध्यक्ष कहलाता था । तट पर बसने वाले ग्रामवासी नियत कर देते थे–

नावध्यक्ष: समुद्रसंयाननदीमुखतरमुखप्रचारान् देवसरोविसरोनदीतरांश्च स्थानीयाश्ववेक्षेत । तद्वेकालकूलग्रामा: कलृप्तं दद्यु: ।[88]

राज्य के समुद्रतटीय मार्गों से होने वाले व्यापार से अत्यधिक कर प्राप्त होता था । राज्य की ओर से बड़ी-बडी नावें तथा डोंगियाँ किराए पर चलती थीं । महुवारे नौकाओं तथा समुद्र पर नदियों में मछली मारा करते थे एवं उसकी आय का छठा भाग राज्य को मत्स्य कर के रूप में देते थे । इसमें नाव का किराया भी शामिल था । समुद्र-तट के पत्तनों के नियमानुसार माल के मूल्य का पाँचवाँ या छठा भाग राज्य कर के रूप में देते थे । परन्तु सरकारी नौकाओं से माल ढ़ोने पर किराया पृथक् देना पड़ता था–

मत्स्यबन्धका नौकाभाटकं षड्भागं दद्यु: । पत्तनानुवृत्तं शुल्कभागं वणिजो दद्यु: । यात्रावेतनं राजनौभि: सम्पतन्त: शंखमुक्ताग्रहिणो नौभाटकं दद्यु: । स्वनौभिर्वा तरेयु:॥[89]

इसके अतिरिक्त पत्तनाध्यक्ष भी होता था जो आयात-निर्यात, बन्दरगाह से सम्बन्धित नियम बनाता था । जिसका पालन नौकाध्यक्ष करता था–

पत्तनाध्यक्षनिबन्धं पण्यपत्तनचारित्रं नावध्यक्ष: पालयेत् ॥[90]

कौटिल्य ने महानौकाओं में कुछ कर्मचारियों का रहना अनिवार्य बताया है जो अग्रलिखित हैं-

१.शासक (कप्तान) - जिसके आदेश से नाव चलती व रुकती थी।

२.नियामक (नावचालक) - जो नाव का संचालन करता था।

---

88 अर्थशास्त्र २/४४/२८, पृ. सं. २१२

89 वही.

90 वही.

३.पत्रग्राहक- लकड़ी आदि काटने का हथियार अपने हाथ में रखता था।

४.रश्मिग्राहक- पतवार एवं मस्तूल की रस्सी हाथ में रखने वाला।

५.उत्सेचक- नाव में भरे हुए पानी को निकालने वाला।

शासकनियामकदात्ररश्मिग्राहकोत्सेचकाधिष्ठिताश्च महानावोहैमन्तग्रीष्म तार्यासु महानदीषु प्रयोजयेत् । क्षुद्रिका: क्षुद्रिकासु वर्षास्त्राविणीषु ॥[91]

इन बड़ी नौकाओं के ठहरने के लिए एक नियत बन्दरगाह बनाया गया था और उन पर पूरी निगरानी रखी जाती थी, जिससे किसी शत्रु राजा के गुप्तचर प्रवेश न कर सकें।

बद्धतीर्थाश्चैता: कार्या: राजद्विष्टकारिणां तरणभयात् । अकालेऽतीर्थे च तरत: पूर्व: साहसदण्ड:॥[92]

इस प्रकार सभी प्रकार से राज्य को कर प्राप्त होता था परन्तु कुछ लोगों से कर नहीं लिया जाता था- ब्राह्मण, सन्यासी, बालक, बीमार, राजदूत, हलकारा और गर्भवती स्त्री तथा पासपोर्ट प्राप्त किए हुए व्यक्तियों से भाड़ा नहीं लिया जाता था-

ब्राह्मणप्रव्रजतिबालवृद्धव्याधितशासनहरगर्भिण्यो नावध्यक्षमुद्राभि: तरेयु: । कृतप्रवेशा: पारविषयिका: सार्थप्रमाणा: विशेयु:॥[93]

इसके अतिरिक्त यदि मल्लाहों की नौकाऐं पानी में डूब जाती थीं या नष्ट हो जाती थीं तो नौकाध्यक्ष को हर्जाना देना होता था–

पुरुषोपकरणहीनायामसंस्कृतायां वा नावि विपन्नायां नावध्यक्षो नष्टं विनष्टं वाभ्यावहेत्॥[94]

---

91 अर्थशास्त्र २/४४/२८, पृ. सं. २१३

92 वही.

93 अर्थशास्त्र २/४४/२८, पृ. सं. २१४

94 अर्थशास्त्र २/४४/२८, पृ. सं. २१५.

सदा बहने वाली नदियों से हमेशा टैक्स लिया जाता था । परन्तु बरसाती नदियों से नहीं। मल्लाहों का यह कर्त्तव्य था कि वह अपने प्रतिदिन के दैनिक कार्य तथा मजदूरी को नौकाध्यक्ष के पास दर्ज कराना होता था।–

सप्ताहवृत्तामाषाढ़ीं कार्तिकीं चान्तरा तर: । कार्मिकप्रत्ययं दद्यान्नित्यं चाह्निकमाह्वयेत् ॥[95]

२.१५ गोऽध्यक्ष विभाग-

अर्थव्यवस्था पर भूमि एवं कृषि के प्रभुत्व की स्थापना के साथ-साथ पशुपालन की भी स्थापना हो चुकी थी। प्राचीन काल में पशुपालन जीविका का प्रमुख स्रोत था । अत: राज्य की ओर से पशुपालन को भी अन्य उद्योगों व विभागों की तरह संरक्षण प्राप्त था क्योंकि इससे राज्य को आय की प्राप्ति होती थी । कृषि फर्मों की भाँति ही राजकीय क्षेत्र में बड़े-बड़े चारागाह थे, जहाँ राजकीय पशुधन का पालन होता था । वहाँ दूसरे व्यक्तियों के भी पशु चरते थे । जिससे राज्य को किराया मिलता था ।

पशुओं की देखरेख के लिए राज्य की ओर से एक बड़ा अधिकारी नियुक्त किया जाता था । जिसे गोऽध्यक्ष कहते थे और पशुपालन निम्नलिखित आठ मुख्य प्रकार थे, जो राज्य की ओर से अपनाए जाते थे । जो गोध्यक्ष की देखरेख में कार्य करते थे ।

1. वेतनोपग्राहिक २. कर-प्रतिकर ३. भग्नोत्सृष्टक ४. भागानुप्रविष्टक ५. व्रजपर्यग्र ६. नष्ट ७. विनष्ट ८. क्षीरधृत सञ्जात ।

गोऽध्यक्षो वेतनोपग्राहिकं करप्रतिकरं भगनोत्सृष्टकं भागानुप्रविष्टकं व्रजपर्यग्रं नष्टं विनष्टं क्षीरघृतसञ्जातं चोपलभ्येत् ॥[96]

उपर्युक्त में से कुछ आज पश्चिमी उत्तर प्रदेश, राजस्थान एवं पँजाब आदि में अनुसरण किए जाते हैं ।

---

[95] अर्थशास्त्र २/४४/२८, पृ. सं. २१५.

[96] अर्थशास्त्र २/४५/२९, पृ. सं. २१६

गाय, बैल, भैंस, भेड़, बकरी, आदि पालतू पशु पाए जाते थे । इसके अतिरिक्त व्याघ्र, ऊँट, गदही, घोड़ी, सर्प, इत्यादि का उल्लेख मिलता है । राज्य की ओर से चोरी हत्या एवं अपहरण आदि पर प्रतिबन्ध था तथा राज्य की ओर से राजकीय एवं निजी पशुओं के संरक्षण की पूरी व्यवस्था की जाती थी । इसके अतिरिक्त गाय, भैंस, साँडों तथा भैंसे के साथ खिलवाड़ करना व मनोरंजन के लिए आपस में लड़ाना अपराध था-

स्वयं हन्ता घातयिता हर्त्ता हारयिता च वध्यः। परपशूनां राजाङ्केन परिवर्तयिता रूपस्य पूर्वं साहसदण्डं दद्यात् ॥[97]

२.१६ मुद्राध्यक्ष विभाग-

इसके अधीन पासपोर्ट विभाग होता था । यह जनपद में आने वाले तथा जनपद से बाहर जाने वाले प्रत्येक व्यक्ति को मुहर लगा हुआ पासपोर्ट देता था तथा बदले में एक मापक टेक्स वसूल करता था । जिस व्यक्ति के पास पासपोर्ट होता था वही जनपद में प्रवेश कर सकता था व बाहर जा सकता था-

मुद्राध्यक्षो मुद्रां माषकेण दद्यात् । समुद्रो जनपदं प्रवेष्टुं निष्क्रमितुं वा लभेत्।[98]

जनपद में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति का पासपोर्ट बनाया जाता था, ताकि शत्रुओं पर कड़ी निगरानी रखी जा सके तथा शान्ति व्यवस्था स्थापित किया जा सके । यदि जनपद में कोई पुरुष बिना पासपोर्ट के प्रवेश करता था या बाहर जाता था तो उससे बारह पण दण्ड लिया जाता था। यदि अपने ही राज्य का कोई व्यक्ति जाली पासपोर्ट लेकर आना-जाना चाहता था तो उससे प्रथम साहस दण्ड लिया जाता था, यदि दूसरे देश का व्यक्ति ऐसा करता था तो उससे उत्तम साहस का दण्ड लिया जाता था ।

द्वादशपणममुद्रो जानपदो दद्यात् । कूटमुद्रायां पूर्वः साहसदण्डः तिरोजनपदस्योत्तमः॥[99]

---

[97] अर्थशास्त्र २/४५/२९, पृ. सं. २१८.

[98] अर्थशास्त्र २/५१/३४ पृ. सं. २३९.

[99] अर्थशास्त्र २/५१/३४ पृ. सं. २३९.

इस प्रकार सम्पूर्ण पासपोर्ट विभाग मुद्राध्यक्ष विभाग के ही अधीन रहता था ।

इस प्रकार कौटिल्य ने बिखरी हुई राजनीतिक को पुनर्गठित तथा राजनीतिक एकता स्थापित करने के लिए अर्थस्थिति को सुदृढ करने पर जोर दिया । कोई भी राज्य जब तक आर्थिक दृष्टि साधन सम्पन्न नहीं होगा तब तक वह राज्य तथा उसकी प्रजा विकास नहीं कर सकती । अतः उन्होने प्रथम अधिकरण में राजनीतिक वर्णन के बाद द्वितीय अध्याय में अध्यक्ष-प्रचार यानी अध्यक्ष-विभाग का वर्णन विशद रूप से किया है ।

२.१७ विवीताध्यक्ष विभाग-

जो अधिकारी विशेष रूप से चारागाह, उनके मार्गों तथा पशुओं की रक्षा के कार्य करवाता था उसे विवीताध्यक्ष या चारागाह का अध्यक्ष कहते थे । उसके अधिकार व्यापक थे।

आम एवं प्रचलित मार्गों से न चलकर टेढ़े-मेढ़े, अटपटे, जंगलों तथा छिपकर चलने वाले व्यक्तियों को पासपोर्ट जाँचने का अधिकार विवीताध्यक्ष को था । इसके अतिरिक्त जिन स्थानों से चोर, शत्रु व शत्रु के गुप्तचर के आने-जाने की संभावना अधिक हो वहाँ चारागाह खुलवाना चाहिए । ऐसा करने पर तीन प्रकार का लाभ होता था-

१. पशुओं को चारा प्राप्त होता था।

२. राज्य को पशुओं व चारागाह से आय प्राप्त होती थी।

३. शत्रु पक्ष के व्यक्ति का भी पता चल जाता था।

चोर व हिंसक जन्तु आमतौर पर ऊँचे-ऊँचे स्थानों पर रहते थे । राज्य की ओर से ऐसे स्थानों की छान-बीन करने की प्रथा थी तथा घने जंगलों में गुफाऐं व खाइयाँ बनाकर निगरानी रखी जाती थी । रेगिस्तानी क्षेत्रों में जहाँ पानी का अभाव था, वहाँ पर राज्य की ओर से मार्गों पर कुँए खुदवाए जाते थे और फल तथा फूल से लदे छायादार वृक्ष लगवाए जाते थे। जँगलों में राज्य की ओर से शिकारी एवं शिकारी कुत्तों वाले आदमी लगातार घूमते रहते थे ताकि आने-जाने वालों को आकस्मिक संकट का सामना न करना पड़े–

विवीताध्यक्षो मुद्रां पश्येत् । भयान्तरेषु च विवीतं स्थापयेत् । चोरव्याल भयान्निम्नारण्यानि शोधयेत् । अनुदके कूपसेतुबन्धोत्सान् स्थापयेत् पुष्पफलवाटांश्च ॥[100]

श्रीमूला टीकाकार विवीताध्यक्ष को मुद्राध्यक्ष के पश्चात् कहा है तथा उन्होंने इस प्रकार से विवीताध्यक्ष की व्याख्या की है-

मुद्राध्यक्षानन्तरं विवीताध्यक्षकथनसङ्गतिः । विवीताध्यक्षः इति । सः मुद्रां पश्येत् प्रतिविवीतपथिकं मुद्राऽस्ति न वेति परीक्षेत । मुद्राविचस्य व्याप्तमर्थमाह- भयान्तरेषु चेति । भयं चोरपरापसर्पचारशङ्का, तद्गोचरेषु भूप्रदेषु कृष्येष्वकृष्येषु वा सर्वविधेषु, विवीतं स्थापयेत् । एतेन 'अकृष्यायां भूमौ पशुभ्यो विवीतानि प्रयच्छेद्' इति भूमिच्छिद्र विधानप्रकरणोक्त्या कृष्यभूमौ विवीताभावात् तत्पथचारिषु मुद्राविचयाभावप्रसङ्ग इति शङ्काः निरस्ताः । चोरव्यालभात्, निम्नारण्यानि निम्नानि गभीराणि भूच्छिद्राणि अरण्यानि च, शोधयेत् तस्करा हिंस्रमृगाश्च तत्र निलीय वसन्ति न वेति मुहुः परीक्षेत ।[101]

इन सब संरक्षणों के बावजूद जंगलों एवं जनपदों में चोरों, दस्युओं तथा शत्रुओं के गिरोह घूमा करते थे । उनके आगमन की सूचना शंख व ढोल बजाकर पहाड़ तथा ऊँचे वृक्षों पर चढ़े आदमी आवाज देकर एवं तेज गति के घोड़े आदि की सवारी से दौड़कर राजपाल (अन्तपाल) को दी जाती थी । पूरे देश में शान्ति एवं व्यवस्था स्थापित करने के लिए राज्य की ओर से प्रयत्न किए जा रहे थे । फिर भी लोगों के मन आतंक, हमला करने का थोड़ा भय बना ही रहता है और जब जंगलों में शत्रुओं का गिरोह उतर आता था तो राजा की मुहर से युक्त पत्र सन्देश पालतू कबूतर से अथवा एक के बाद दूसरे आदमी से कहलवाकर पहुंचाया जाता था। यदि शत्रु रात्रि में जंगल में प्रवेश करता था तो आग जलाकर करता था और यदि दिन में प्रवेश करता था तो धुँआ लुङ्ग करके सूचित किया जाता था-

---

100 अर्थशास्त्र २/५२/३४, पृ. सं. २३९-४०.

101 कौटिलीयार्थशास्त्रम् पञ्चटीकोपेतम्, २/५२/३४, पृ. सं. ४८३ ।

लुब्धकश्वगणिनः परिव्रजेयुररण्यानि। तस्करामित्राभ्यागमे शंखदुन्दुभिशब्दमग्राह्याः कुर्युः शैलवृक्षाधिरूढा वा शीघ्रवाहना वा । अमित्राटवीसंचारं च राज्ञो गृहकपोतैर्मुद्रायुक्तैः हारयेयुः धूमाग्निपरम्परया वा ।[102]

इसके अतिरिक्त द्रव्यवनों एवं हस्तिवनों के घास, लकड़ी व कोयले आदि का प्रबन्ध करता था, दुर्ग के रास्ते जाने का कर, चोरों से की हुई रक्षा का कर, गो रक्षा का कर तथा इन सभी वस्तुओं के खरीद-फरोक्त का प्रबव्ध भी विवीताध्यक्ष करवाता था।

द्रव्यहस्तिवनाजीवं वर्तनी चोररक्षणम्। सार्थातिवाह्यं गोरक्ष्यं व्यवहारं च कारयेत्॥[103]

इस प्रकार कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में विभागों का विस्तृत विवेचन किया । इनका संक्षेपतः विश्लेषण करने के पश्चात् आधुनिक भारत की आर्थिक संस्थाओं के साथ तुलनात्मक विवेचन किया जा रहा है ।

समीक्षा-

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् आज की दृष्टि में भारत प्रत्येक क्षेत्र में विकास कर रहा है । १९९१ के बाद उदारीकरण की नीति बनायी गयी है । भारत सरकार आर्थिक, सामाजिक संरक्षण प्रदान करने के लिए कई योजनाएँ चला रही हैं । इन योजनाओं को संचालित करने के लिए सरकार पृथक् विभागों की स्थापना की है । जिनकी देख-रेख में ये योजनायें संचालित की जा रही है । परन्तु ये भारतीय सरकार के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में रहते हैं । वे निम्नांकित विभाग हैं-

वित्त विभाग

जिस प्रकार कौटिल्य के अर्थशास्त्र में अक्षपटल विभाग वित्तीय प्रशासन के लिए जिम्मेदार होता था उसी प्रकार आज अर्थशास्त्रीय प्रबन्धन में वित्त मंत्रालय सरकार, वित्तीय प्रशासन

---

102 अर्थशास्त्र २/५२/३४ पृ. सं. २४०.

103 अर्थशास्त्र २/५२/३४ पृ. सं. २४०.

के लिए जिम्मेदार है। यह देश को प्रभावित करने वाले सभी आर्थिक और वित्तीय मामलों से संबद्ध है । वित्त मन्त्रालय के सबसे महत्त्वपूर्ण कार्यों में नियमन और बजट निर्माण है । मंत्रालय की कुछ प्रमुख जिम्मेदारियों में नियम बनाना, भुगतान कराना, उपलब्धियाँ और सरकारी कर्मचारियों की अन्य सेवा शर्तों का विनियमन शामिल है । यह स्थानीय निधि लेखा परीक्षा, राष्ट्रीय बचत, लॉटरी, बीमा और कोषागार निदेशालय पर प्रशासनिक नियंत्रण रखता है ।[104]

मंत्रालय विभिन्न राज्यों के लिए संसाधनों के स्थानांतरण सहित सरकार के व्यय को नियंत्रित करता है । यह देश के सभी वित्तीय लेनदेन की निगरानी के लिए नोडल केन्द्र है । इसके अलावा इसका सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य बजट तैयार करना, वर्ष के दौरान प्राप्तियों और व्यय पर नजर रखना है । विभाग के महत्त्वपूर्ण कार्य धन के पुनः विनियोग की निगरानी है । वित्तीय मामलों से संबन्धित नियमों की तैयारी और विभागों द्वारा प्राप्त वित्तीय प्रस्तावों का परीक्षण आदि महत्त्वपूर्ण कार्य है ।[105]

वित्तीय सम्स्थाएं- आज अनेक वित्तीय संस्थाएँ काम कर रही हैं । जो लोगों से जमाओं तथा अपनी संचित निधियों के आधार पर विभिन्न प्रकार से ऋण उपलब्ध कराती हैं । वे निम्नलिखित हैं[106]-

- भारतीय क्रेडिट रेटिंग सूचना सेवा लिमिटेड (क्रिसील)
- बीमा नियामक और विकास प्राधिकरण (आईआरडीए)
- औद्योगिक और वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड (बीआईएफआर)
- भारत के निर्यात आयात बैंक
- राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड)
- भारतीय लघु उद्योग बैंक (सिडबी)
- राष्ट्रीय आवास बैंक (एनएचबी)

---

104 http:// bharat.gov.in

105 *राष्ट्रीय पोर्टल विषय वस्तु प्रबन्धल दल,* द्वारा समीक्षित : २९/०४/२०११ ।

106 *वही.*

इसके अतिरिक्त भारत में अनेक व्यापारिक बैंक तथा गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थाएँ भी काम कर रही हैं। ये भी जो लोगों से जमाओं तथा अपनी संचित निधियों के आधार पर विभिन्न प्रकार से ऋण उपलब्ध कराती हैं । परन्तु इस क्षेत्र में सर्वोच्च संस्था भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) है । जो नियमों का निर्माण करती है जिसके अनुसार उपर्युक्त वित्तीय संस्थाएँ कार्य करती हैं ।[107]

कृषि विभाग

आज भी प्राचीन काल की तरह भारत एक कृषि प्रधान देश है । इसीलिए कृषि मंत्रालय का पृथक रूप से गठन किया गया है, जिससे कृषि के क्षेत्र में नये तरीके से विकास व उत्पादन में वृद्धि किया जा सके । कृषि भारत की कुल जनसंख्या के 58.4% से अधिक लोगों की आजीविका का मुख्य साधन है। देश के कुल सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में भी कृषि का योगदान लगभग पांचवें हिस्से के बराबर है। कुल निर्यात का लगभग १० प्रतिशत हिस्सा कृषि से प्राप्त होता है और यह अनेक उद्योगों के लिए कच्चा माल भी उपलब्ध कराता है। अस्थिर और कम विकास दर देश के अनेक हिस्सों में कृषि संकट न केवल राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा के लिए खतरा है बल्कि राष्ट्र के रूप में आर्थिक विकास के लिए कृषि महत्वपूर्ण है।[108]

अतः भारत सरकार द्वारा कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए अनेक योजनाएँ चलायी जा रही है[109]-

- गेहूं की फसल पर आधारित समेकित अनाज विकास कार्यक्रम ।
- चावल की फसल पर आधारित समन्वित अनाज विकास कार्यक्रम ।
- मोटे अनाजों पर आधारित समेकित विकास कार्यक्रम, क्षेत्र के आधार ।
- गन्ना फसल के सतत विकास के लिए, फसल आधारित प्रणाली ।
- जूट के लिए विशेष विकास कार्यक्रम को नौंवी योजना के दौरान लागू किया गया था। इसके बाद अक्टूबर 2000 में कृषि को आर्थिक मंच में शामिल कर लिया गया ।

---

107 प्रो० एस. एन. लाल. व डॉ एस. के. लाल, *भारतीय अर्थव्यवस्था सर्वेक्षण तथा विश्लेषण,* खण्ड, ८:१६-२७ ।

108 *राष्ट्रीय पोर्टल विषय वस्तु प्रबन्धल दल,* द्वारा समीक्षित : २९/०४/२०११ ।

109 वही.

जिससे राज्य सरकारों को काफी सुविधा प्राप्त हुई। इन कार्यक्रमों को लागू करने के लिए राज्यों को उनकी जरूरतों के हिसाब से सहायता भी दी गई ।

कपास के विकास के लिए केंद्र सरकार द्वारा प्रायोजित गहन कपास विकास कार्यक्रम योजना 2008-09 में शुरू की गई है। इसे कपास की गई है। इसका उद्देश्य कपास की उत्पादकता में वृद्धि करना है। साथ ही यह योजना के विस्तार और विकास गतिविधियों के लिए सहायता भी प्रदान करती है।

वाणिज्य एवं उद्योग विभाग

कौटिल्य के समय में वाणिज्य और उद्योग अलग-अलग विभाग थे परन्तु आज इनका परिगणन एक विभाग के अधीन किया जाता है । वाणिज्य एवं उद्योग निदेशालय की प्रमुख जिम्मेदारी देश में औद्योगिक विकास और इसके लिए जरूरी बुनियादी सुविधाएं उपलब्ध कराना तथा उद्योगों में पूंजी निवेश को प्रोत्साहित करना है। इसके लिए निदेशालय सुविधाओं के साथ ही साथ सब्सिडी व अन्य सुविधाएं भी उपलब्ध कराता है । उद्योगों को बिजली, भूमि और पानी के साथ ही राजकोषीय प्रोत्साहन उपलब्ध कराना भी निदेशालय की ही जिम्मेदारी है।[110]

वाणिज्य और उद्योग से सम्बन्धित विषय[111] –

- आयात एवं निर्यात ।
- विशेष आर्थिक क्षेत्र (एसईजेड) ।
- विभिन्न देशों और गठबंधनों के साथ भारत का व्यापार ।
- रसायन एवं पेट्रो रसायन ।
- तेल एवं प्राकृतिक गैस ।
- खाद्य एवं प्रसंस्करण ।
- कपड़ा तथा आवास ।
- बीमा ।

---

[110] bharat.gov.in

[111] *राष्ट्रीय पोर्टल विषय वस्तु प्रबन्धल दल,* द्वारा समीक्षित : ११/०१/२०११ ।

- रिटेल।
- पर्यटन।

उपभोक्ता मामले, खाद्य एवं सार्वजनिक वितरण

उपभोक्ता मामले, खाद्य एवं सार्वजनिक वितरण मंत्रालय के अधीन कार्यरत उपभोक्ता मामलों का विभाग, उपभोक्ता सहकारिताओं, कीमत की निगरानी और अनिवार्य वस्तुओं की उपलब्धता, देश में उपभोक्ताओं की गतिविधि और सांविधिक निकायों जैसे भारतीय मानक ब्यूरो (बीआईएस) और तौल एवं माप को नियंत्रित करने के लिए जिम्मेदार है।[112]

भारतीय मानक ब्यूरो एक राष्ट्रीय मानक निकाय है जो 1अप्रैल, 1987 को संसद के अधिनियम के माध्यम से अस्तित्व में आया। जिसके प्रमुख कार्य-मानक तैयार कर उन्हें लागू करना, उत्पादों व प्रणाली दोनों ही के लिए प्रमाणन योजना संचालित करना, परीक्षण प्रयोगशालाओं का गठन व प्रबंधन, उपभोक्ताओं में जागरुकता पैदा करना तथा अंतर्राष्ट्रीय मानक निकायों के साथ निकट संपर्क बनाए रखना आदि है।[113]

उपर्युक्त मामलों से संबन्धित सरकार द्वारा कुछ अधिनियम पारित किए गये हैं[114]-

१. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम - १९८६।
२. अनिवार्य वस्तु अधिनियम -१९५५।
३. काला बाजारी की रोकथाम और अनिवार्य वस्तु की आपूर्ति का अनुरक्षण अधिनियम- १९८०।

ग्रामीण विकास विभाग

---

112 bharat.gov.in

113 *राष्ट्रीय पोर्टल विषय वस्तु प्रबन्धल दल,* द्वारा समीक्षित : १२/०१/२०११।

114 वही.

यह विभाग ग्रामीण विकास मंत्रालय के अधीन आता है । भारत गांवों का देश है और उसमें से लगभग आधे गांवों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति बेहद कमजोर है । आजादी के बाद से ग्रामीण जनता का जीवन स्तर सुधारने के लिए ठोस प्रयास किए गए हैं, इसलिए ग्रामीण विकास की एकीकृत अवधारणा रही है और सभी पंचवर्षीय योजनाओं में गरीबी उन्मूलन की सर्वोपरी चिंता रही है। ग्रामीण विकास कार्यक्रम में निम्नलिखित तथ्यों का समावेश है[115]-

- ग्रामीण क्षेत्रों में आधारभूत सुविधाओं जैसे स्कूल, स्वास्थ्य सुविधाओं, सड़क, पेयजल, विद्युतीकरण आदि का प्रावधान ।
- ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि उत्पादकता में सुधार ।
- सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए सामाजिक सेवाओं जैसे स्वास्थ्य और शिक्षा का प्रावधान ।
- कृषि उत्पादकता बढ़ाकर, ग्रामीण रोजगार उपलब्ध कराकर ग्रामीण उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए योजनाओं को लागू करना ।
- ऋण और सब्सिडी के माध्यम से उत्पादक संसाधन उपलब्ध कराकर गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले व्यक्तिगत परिवारों और स्वयं सहायता समूह (एसएचजी) के लिए सहायता ।

स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण

स्वास्थ्य एवं तंदुरूस्ती भारत सरकार की प्रमुख चिंता है । स्वस्थ नागरिक ही स्वस्थ राष्ट्र के निर्माण में योगदान देता है। पिछले वर्षों में सरकार ने अपने नागरिकों के बेहतर जीवन स्तर के लिए विभिन्न स्वास्थ्य कार्यक्रम और नीतियां आरंभ की है। स्वास्थ्य का मुद्दा स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय के अंतर्गत आता है। इस मंत्रालय के कई विभाग हैं, जो निम्नलिखित हैं[116]-

१. स्वास्थ्य विभाग ।
२. परिवार कल्याण विभाग ।
३. आयुर्वेद, योग, प्राकृतिक चिकित्सा, यूनानी, सिद्ध और होमियोपैथी विभाग ।

---

115 *राष्ट्रीय पोर्टल विषय वस्तु प्रबन्धल दल,* द्वारा समीक्षित : २९/०४/२०११ .

116 *राष्ट्रीय पोर्टल विषय वस्तु प्रबन्धल दल,* द्वारा समीक्षित : २९/०४/२०११ .

हाल ही में मंत्रालय ने संतुलित आहार के माध्यम से नागरिकों को अपना स्वास्थ्य बनाए रखने की गाइड के रूप में *हेल्दी इंडिया* नाम की वेबसाइट शुरू की है।[117]

इस प्रकार भारत सरकार द्वारा देश के विकास के लिए तथा आर्थिक सामाजिक संरक्षण प्रदान करने लिए पृथक्-पृथक् मंत्रालयों तथा उसके विभगों की स्थापना की गयी है ।

अगले अध्याय में राज्य की आर्थिक नीति का वर्णन किया गया है । जिसमें औद्योगिक नीति, व्यापारिक नीति, बैंकिंग व्यवस्था तथा सामाजिक नीतियों के विषय में विवेचन किया गया है और आधुनिक आर्थिक नीति के साथ समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है ।

---

117 *वही.*

तृतीय अध्याय:

राज्य की आर्थिक नीति

पिछले अध्याय में राज्य के उन आर्थिक विभागों के विषय में चर्चा की गयी है, जिनसे हमें राज्य को प्राप्त होने वाली आर्थिक आय तथा कौटिल्य की आर्थिक नीतियों का ज्ञान होता है। आचार्य कौटिल्य ने सम्पूर्ण राज्य के लिए एक समान आर्थिक- नीतियों का निर्माण किया ताकि सभी लोगों को समान अधिकार मिल सके।

अर्थनीति से तात्पर्य है कि अर्थव्यवस्था किस प्रकार से गतिशील बनी रहे, उत्पादन के ढाँचे के निर्धारण तथा संसाधनों के बटवारे के संबन्ध में इनमें से कौन सी प्रणाली का प्रयोग किया जाय जिनसे बटवारे की कुशलता उत्तम बनी रहे तथा संसाधनों का किस प्रकार से प्रयोग किया जाय जिसके कारण मूल्य स्थिरता कायम रह सके, देश में जीवन की गुणवत्ता में उन्नति होती रहे।[1]

इस आर्थिक नीति को लागू करने के लिए कृषि नीति, औद्योगिक नीति, व्यापारिक नीति तथा नियोजन नीति आदि क्रियात्मक नीतियाँ हैं, जो यह बताती है कि अर्थव्यवस्था के बिभिन्न क्षेत्रों में किस प्रकार तथा किस वरीयता से आर्थिक विकास हो।

परन्तु कैटिल्य की आर्थिक नीति आज के भारतीय आर्थिक-नीति की तरह पंचवर्षीय योजना पर आधारित नहीं थी। क्योंकि ऐसा स्पष्ट उल्लेख नहीं प्राप्त होता है। जैसा कि ज्ञात है कि कोई नियोजन लागू किया जाता है तो उसका आधार-वर्ष निर्धारित किया जाता है। इस आधार पर एक वर्ष को दृष्टि में रखकर वार्षिक योजनाएँ प्रचलित रही होंगी। कौटिल्य की आर्थिक- नियोजन का मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित थे[2]-

१.राज्य विभागों की आन्तरिक सुरक्षा बनी रहे।

---

[1] प्रो. एस.एन लाल व डॉ एस. के लाल, *भारतीय अर्थव्यवस्था- सर्वेक्षण एंव विश्लेषण,* खण्ड १:९.

[2] Radhakrishna chaudhary, *Kutikya'sPolitical Ideas and Institution,* chapter 9, पृ. सं. ३९२.

२.राज्य को सर्व साधन सम्पन्न बनाना जिससे राज्य का चौमुखी कल्याण एवं विकास हो ।

३. ग्रामीण और शहरी लोगों की जीविका के साधन को सुरक्षा प्रदान करना ।

४. आत्मनिर्भर बनाना ।

इसके अतिरिक्त कौटिल्य ने उद्योग के विषय में वर्णन किया है, जिसके द्वारा व्यापार एंव पूँजी निर्माण का विकास होता है । मजदूर वर्ग व मालिक के बीच अच्छा संबन्ध होना चाहिए आय का समान वितरण हो एवं सामाजिक न्याय की प्राप्ति हो । वे एक ऐसे अनुशासित राज्य की स्थापना करना चाहते थे, जो मानव की उन्नति तथा अस्तित्व को आवश्यक संतुलन बनाए रखने के लिये तत्पर रहे ।[3]

इस सिद्धान्त को पूर्ण करने के लिए आचार्य कौटिल्य ने दण्ड नीति (शासन) पर विशेष बल दिया है। उनके अनुसार दण्डनीति ही अप्राप्त वस्तुओं को प्राप्त कराती है, प्राप्त वस्तुओं की रक्षा करती है, रक्षित वस्तुओं की वृद्धि करती है तथा संवर्द्धित वस्तुओं को समुचित कार्यों में लागाने का निर्देश देती है । उसी पर विश्व की सारी यात्रा निर्भर है । इसलिए राजा लोक को समुचित मार्ग पर लाने के लिए दण्ड का ठीक प्रकार से प्रतिपादन करे-

नीतिः दण्डनीतिः । अलब्धलाभार्था, लब्धपरिरक्षणी, रक्षितविवर्धनी, वृद्धस्य तीर्थेषु प्रतिपादनी च ।[4]

श्रीमूला टीकाकार दण्ड नीति के स्वरूप के विषय में इस प्रकार कहा है-

दण्डणीतेः स्वरूपादिकमाह- आन्वीक्षिकीत्यादि । योगक्षेमौ साधयति इति योगक्षेमसाधनः । दण्डोदमः सामादिषु प्रधानभूत उपायविशेषः । अथवा दण्डस्थत्वाद् राजा दण्डः । सति दण्डभये लोक आन्वीक्षिक्यदिषु सम्यक् प्रवर्तते, नत्वितरथेति दण्डस्याऽऽन्वीक्षिक्यादि योगक्षेमसाधनत्वं विज्ञेयं । अत एवाहुः-

---

[3] *Kutikya'sPolitical Ideas and Institution,* chapter 9, पृ.सं. ३९३.

[4] अर्थशास्त्र, १/१/३, पृ.सं. १२.

सर्वो दण्डजितो लोको दुर्लभो हि शुचिः क्वचित् ।

दण्डस्य हि भयात् कृत्स्नं जगद् भोगाय कल्पते । इति ।[5]

इस प्रकार कौटिल्य ने आर्थिक नीति को ठीक तरीके से लागू करने करने के लिए दण्डनीति का सहारा लिया है । यह दण्डनीति ना ही अत्यन्त कठोर था ना ही सरल था अपितु यह समुचित दण्ड था, जो राजा द्वारा दिया जाता था-

तीक्ष्णदण्डो हि भूतानामुद्वेजनीयः । मृत्युदण्डः परिभूयते । यथार्हदण्डः पूज्यः । सुविज्ञातप्रणीतो हि दण्डः प्रजा धर्मार्थकामैर्योजयति ।[6]

वर्तमान समय में प्रचलित राज्य की आर्थिक-नियोजन का मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित है[7]-

१.आर्थिक विकास को बढ़ाव देना।

२. पूर्ण रोजगार की प्राप्ति।

३. गरीबी निवारण और रोजगार अवसरों का सृजन।

४. निवेश पूँजी निर्माण को बढ़ावा देना।

५. आय वितरण व क्षेत्रीय विषमता को दूर करना।

इसके अतिरिक्त आर्थिक नियोजन में आवश्यकता पड़ने पर कुछ नयी आवश्यकता को जोड़ा गया । जैसे- आधुनिकीकरण (छठी योजना में), मानव संसाधन का विकास (आठवीं योजना), निजीकरण, उदारीकरण, वैश्वीकरण के दौर में गरीबों को सुरक्षा जाल प्रदान करना। तथा तीव्र आर्थिक विकास के साथ समावेशी विकास (११वीं व १२वीं योजना में) ।[8]

---

[5] कौटिलीयार्थशास्त्रम् पञ्चटीकोपेतम्, १/१/४. पृ.सं. ३७३-७४.

[6] अर्थशास्त्र, १/१/३, पृ.सं. १२.

[7] प्रो. एस.एन लाल व डॉ एस. के लाल, *भारतीय अर्थव्यवस्था- सर्वेक्षण एंव विश्लेक्षण,* खण्ड २:१.

[8] वही.

इस प्रकार हम कि कौटिल्य के आर्थिक नियोजन के उद्देश्य को भारत की आर्थिक-नियोजन में यथावत् देखते हैं तथा आवश्यकता पड़ने पर उत्तरोत्तर विकास को ध्यान में रखते हुए, आर्थिक नियोजन के क्षेत्र का विस्तार किया जाता रहा है। किन्तु दोनों की आर्थिक-नियोजन की प्रवृत्ति एक ही है, राज्य में निवास करने वाले लोगों का चौमुखी कल्याण एंव विकास।

उपर्युक्त उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कौटिल्य की आर्थिक नीति के कुछ प्रमुख सिद्धान्त अधोलिखित हैं-

३.१ भू-नीति

आचार्य कौटिल्य ने भू-नीति पर विशेष बल दिया था। कौटिल्य के अनुसार भूमि उपजाऊ होनी चाहिए, परन्तु यदि उपजाऊ नहीं है तो उसे उपजाऊ बनाना चाहिए। इस कार्य का उत्तरदायित्व राज्य के पास होता था। वे कहते हैं कि यदि कोई किसान किसी बंजर भूमि को अपने परिश्रम के द्वारा खेती योग्य बनाता है तो, राज्य की ओर से उस भूमि पर किसान का अधिकार माना जाय तथा राज्य उससे भूमि वापिस न ले। परन्तु यदि कोई किसान खेती योग्य भूमि को परती छोड़ दिया है तो उससे लेकर जरूरत मन्द लोगों को दे दी जानी चाहिए-

अकृषतामाच्छिद्यानेभ्यः प्रयच्छेत्। ग्रामभृतृकवैदहका वा कृषेयुः। अकृषहन्तोऽपहीनं दद्युः।[9]

श्रीमूला टीकाकार कहते हैं कि यदि जरूरत मन्द व्यक्ति नहीं प्राप्त होता है तब ग्राम का मुखिया या व्यापारी को उस पर खेती करना चाहिए-

अकृषातामिति। अकृषतां कृषिमकुर्वतां, क्षेत्राणीति शेषः। आच्छिद्य हृत्वा, अन्येभ्यः प्रयच्छेत्। तदभावे ग्रामभृतकवैदेहकाः ग्रामाधिकारिणो वणिजश्च कृषेयुः। अकृषन्तोऽभ्युपेत्य कृषिमकुर्वन्तः, अवहीनं नष्टं दद्युः।[10]

---

[9] अर्थशास्त्र, २/१७/१ पृ.सं. ७८.

[10] *कौटिलीयार्थशास्त्रम् पञ्चटीकोपेतम्*, २/१९/१,पृ.सं. ११.

इस प्रकार आचार्य कौटिल्य के भू-नीति के सिद्धान्त के अनुसार उन्हीं को अधिकार दिया जाय, जो उस भूमि पर कार्य करे। विशेष रूप से जरूरत मन्द लोगों को पहले प्रदान किया जाय। कौटिल्य के इस सिद्धान्त की प्रासंगिकता आज हम नक्सलवादी आन्दोलन समाधान के रूप में देख सकते हैं।

३.२ कृषि एवं पशु-पालन नीति

भारत प्राचीन काल से ही कृषि प्रधान देश है। कौटिल्य के समय में कृषि एवं पशुपालन आय का मुख्य स्रोत था एवं इसके लिए पृथक्-पृथक् विभाग की स्थापना की गयी थी।

कृषि विभाग का अध्यक्ष **सीताध्यक्ष** कहलाता था तथा इसके कार्यों का विस्तृत रूप से विवेचन द्वितीय अध्याय (२.११) में किया गया है। कृषि के विकास के लिए राज्य की ओर से किसानों को अन्न, बीज, बैल और धन आदि विशेष सुविधा प्रदान किया जाता था। जिन्हें किसान अपनी सुविधा अनुसार धीरे-धीरे वापस लौटाते थे-

धान्यपशुहिरण्यैश्चैनानुगृह्णीयात्। तान्यनु सुखेन दद्युः।[11]

इसके अतिरिक्त किसानों की स्वास्थ्य वृद्धि और रूग्णता निवारण के लिए राजा के द्वारा पर्याप्त आर्थिक सहायताएँ दी जाती थी। जो राजकोष पर भारित होता था। यदि राजकोष को कोई हानि पहुँचती है तो राजा को उसे बन्द कर देना चाहिए। अन्यथा कोष के कम हो जाने पर उसकी पूर्ति के लिये नगर और जनपद के निवासियों को अधिक कर देकर पीड़ित होना पड़ता था -

अनुग्रहपरिहारौ चैभ्यः कोषकरौवृद्धकरौ दद्यात्। कोशोपघातिकौ वर्जयेत्। अल्पकोशौ हि राजा पौरजनपदानेव ग्रसते।[12]

---

11 *अर्थशास्त्र*, २/१७/१ पृ.सं. ७८।

12 वही।

कृषि के समान कौटिल्य ने पशुपालन को व्यक्तिगत पशुपालन की परिधि से निकालकर विशाल स्तर पर पशुपालन को जन्म दिया । इनमें सबसे बड़ा पशुपालक राज्य होता था जिसके कई सौ किलोमीटर के चारागाह होते थे, जहाँ हजारों पशु आते जाते थे तथा राजकीय कर्मचारी ही उनकी रखवाली करते थे । व्यक्तिगत क्षेत्र में भी पशुपालन प्राकितिक अवस्था की परिधि से बाहर निकल चुका था । अब वह व्यावसायिक आधार पर चलाया जाता था ।[13] पशुधन में गाएं, भैंसें, बकरी, भेड़, ऊँट, गधे, घोड़े, सुअर, कुत्ते आदि होते थे । इनसे राज्य को कर मिलता था जो राजकोष में जमा किया जाता था-

कुक्कुटसूकरमर्धं दद्यात् । क्षुद्रपशवः षड्भागम् । गोमहिषाश्वतरखरोष्ट्राश्च दशभागम् । बन्धकीपोषका राजप्रेष्याभिः परमरूपयौवनाभिः कोशं संहरेयुः ।[14]

राज्य कि ओर से पशुपालन क्षेत्रों, पशु-प्रजनन क्षेत्रों, दुग्धशालाओं की व्यवस्था थी, जिसमें आवश्यक कर्मचारी जैसे- गोपालक, पिण्डारक (भैंस चराने वाला), दोहक (दुध दुहने वाले), मन्थक (दूध मथने वाले) नियुक्त किए जाते थे-

गोपालकपिण्डारकदोमन्थकलुब्धकाः शतं शतं धेनुनां हिरण्यभृताः पालयेयुः । क्षीरघृतभृहि वत्सानुपहन्युरिति वेतनोपग्राहिकम् ।[15]

३.३ नगर-नियोजन नीति

कौटिल्य जैसा कोई कूटनीतिज्ञ एवं दूरदृष्टि वेत्ता नहीं था, उन्हें यह ज्ञात था कि औद्योगिक विकास करना है तो सबसे पहले नगर, जनपद, दुर्ग आदि का निर्माण किया जाय। अतः उन्होनें जनपदों के निर्माण पर जोर देते हुए कहते हैं कि नये जनपदों का निर्माण करो एवं पुराने जनपद का विकास करो । ताकि यहाँ उपनिवेश की स्थापना की जा सके । क्योंकि एक

---

[13] कौटिल्य का आर्थिक चिन्तन, पृ.सं. १६.

[14] अर्थशास्त्र, ५/९०/२, पृ.सं. ४१४.

[15] अर्थशास्त्र, २/४५/२९, पृ.सं. २१८.

स्थान पर कौटिल्य कहते हैं कि आओ तुम और हम मिलकर शून्य भूमि में उपनिवेश बसायें- *त्वं चाहं च शून्यं निवेशायावह।*[16]

इस प्रकार इससे यह ज्ञात होता है कि उपनिवेश का विकास वहीं किया जाय जहाँ भूमि खाली हो। आज भी उपनिवेश वहीं स्थापित किए जाते हैं जहाँ भूमि खाली पड़ी होती है।

कौटिल्य ने उपनिवेश के विकास से पहले नगर नियोजन के विकास पर बल दिया क्योंकि उपनिवेश का विकास जनपद की जनसंख्या पर निर्भर करता है। जनसंख्या जितनी अधिक होगी उपनिवेश का विकास उतना ही अधिक होगा। जिसके लिए उन्होने लोगों के शहर की ओर जनसंख्या के स्थानान्तरण पर बल दिया। किसी जनपद में जनसंख्या में कमी है तो बाहर के लोगों को बुलाकर बसाया जाय। यदि ऐसा सम्भव न हो तो अपने ही देश की जनसंख्या बढ़ाकर आबाद करना चाहिए-

भूतपूर्वमभूतपूर्वं वा जनपदं परदेशापवाहनेन स्वदेशाभिष्यन्दवमनेन वा निवेशयेत्।[17]

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में हम देख सकते हैं कि कौटिल्य का यह सिद्धान्त आज भी प्रासंगिक है। आज यह बात की जा रही है कि जिस देश की जितनी अधिक जनसंख्या है वह देश उतना ही अधिक विकास करेंगे। जैसे- चीन, मैक्सिको, ब्राजील आदि देशों कि जनसंख्या अधिक है और इनका आर्थिक दर बढ़ रहा है।

जनपदों की स्थापना के बाद उन्हें गाँवों में विभक्त किया जाता था और प्रत्येक गाँव की जनसंख्या सौ परिवारों से लेकर पाँच सौ परिवारों तक रखी जाती थी। जिसके बीच की दूरी एक कोश से दो कोश तक होती थी, ताकि आवश्यकता पड़ने पर वे एक दूसरे की रक्षा में मदद कर सकें। गाँवों में विवाद न उत्पन्न हो इसके लिए उनके बीच सीमा बटवारे के लिए नदी, पहाड़, जंगल, खाईं, तालाब, बेर के वृक्ष, शेमल, शमी, वरगद आदि के वृक्ष का प्रयोग किया जाता था-

---

[16] अर्थशास्त्र, ७/११६/११, पृ. सं. ५०५.

[17] अर्थशास्त्र, २/१७/१ पृ.सं. ७७.

कुलशतावरं पञ्चशतावरं ग्रामं क्रोशाद्विक्रोश सीमानमन्योन्यारक्षं निवेशयेत्। नदीशैलवन गृष्टिदरीसेतुबन्धशाल्मली शमीक्षीरवृक्षानन्तेषु सीम्नां स्थापयेत्।[18]

आठ सौ गांवो बीच में एक स्थानीय, चार सौ गांवोंके समूह में एक द्रोणमुख, दो सौ गांवों के बीच में एक खार्वटिक, दस गांव समूह के बीच में एक संग्रहण नामक स्थानों की स्थापना की जाती थी-

अष्टशतग्राम्या मध्ये स्थानीयं चतुश्शतग्राम्या द्रोणमुखं, द्विशतग्राम्या खार्वटिकं, दशग्रामी सङ्ग्रहेण सङ्ग्रहणं स्थापयेत्।[19]

प्रान्तीय प्रशासन का स्वरूप

केन्द्र
↓
प्रान्त (प्रमुख अधिकारी 'कुमार' या आर्यपुत्र)
↓
मण्डल (कमिश्नरी) – प्रमुख अधिकारी प्रदेष्टा या प्रादेशिक होता था।
↓
आहार या विषय (जिला) - प्रमुख अधिकारी 'विषयपति या स्थानिक होता था।
↓
स्थानीय (८०० ग्रामों का समूह)
↓
द्रोणमुख (४०० ग्रामोंका समूह)
↓
खार्वटिक (२०० ग्रामों का समूह)
↓
संग्रहण (दश ग्रामों का समूह) - इसका प्रमुख अधिकारी गोप होता था।
↓
ग्राम (प्रमुख अधिकारी ग्रामणी)

चित्र संख्या: ३.१

[18] वही.

[19] अर्थशास्त्र, २/१७/१ पृ.सं. ७७.

इस प्रकार कौटिल्य ने प्रान्तीय प्रशासन का ऐसा स्वरूप निर्धारित किया था, जो सम्पूर्ण राज्य की अर्थव्यव्स्था को सुदृढ़ करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते थे और ये सभी उत्तरोत्तर अपने पहले के अधीन कार्य करते थे। आज भी इस प्रकार का स्वरूप हम भारतीय प्रशासन में देखते हैं।

इस जनपद में शूद्रों व किसानों को बसाने पर अधिक जोर गिया है- *शूद्रकर्षकप्रायं*[20] परन्तु ऋत्विक, आचार्य, पुरोहित एवं राज्य तथा समाज के प्रतिष्ठित महानुभावों को यहाँ बसने के लिये सुविधायें दी जाती थी। इनको दी गयी भूमि करमुक्त थी तथा शेष अधिकारी गण जैसे- विभागीय अध्यक्षों, संख्यायकों(क्लर्कों), गोपों(दश गाँवों के अधिकारियों), स्थानिकों(नगर के अधिकारियों), अनीकस्थों (हस्ति शिक्षकों), वैद्यों, अश्व शिक्षकों, जंघा कारिकों (दूर देश में जीविकोपार्जन करने वाले लोगों) आदि को भूमि प्रदान की जाती थी। परन्तु उन्हें अपनी भूमि बेचने का अधिकार नहीं था-

ऋत्विक् आचार्यपुरोहितश्रोत्रियेभ्यो ब्रह्मदेयान्यदण्डकराण्यभिरूपदायकानि प्रयच्छेत्। अध्यक्षसंङ्ख्यायकादिभ्योः गोपस्थानिकानीकस्थ चिकित्साअश्वदमकजङ्घाकारिकेभ्यश्च विक्रयाधानवर्जनम्।[21]

इस प्रकार एक ही जनपद में शूद्र, किसान से लेकर पुरोहित, ब्राह्मण, अधिकारी तथा कर्मचारी इत्यादि मिलकर रहते थे। जो एकता को द्योतित करता था।

जनपद में वर्षा के जल को रोकने के लिए सेतुबन्ध बनवाए गए थे। जिसका उपयोग घरेलू कार्यों तथा भूमि-कृषि सिचाई के काम लिया जाता था। यदि प्रजाजन अपने प्रयास से सेतुबन्ध का निर्माण करवाता था तो राज्य की ओर से उन्हे भूमि, मार्ग, लकड़ी तथा अन्य आवश्यक सामाग्री देकर प्रोत्साहित किया जाता था। देवालय, विद्यालय आदि सार्वजनिक प्रयोग के स्थानों के लिये भी निःशुल्क भूमि आदि की सुबिधा दी जाती थी। गाँव में निवास

---

[20] अर्थशास्त्र, २/१७/१ पृ.सं. ७७.

[21] अर्थशास्त्र, २/१७/१ पृ.सं. ७८.

करने वाले सभी लोगों को किसी निर्माण कार्य में सहायता करने का दायित्व था। वह स्वयं उपस्थित होकर या नौकर या बैल भेजकर सहायता प्रदान करता था। जो सहायता नहीं प्रदान करता था उसे निर्माण के पश्चात् उपयोग नहीं करने दिया जाता था-

सहोदकमाहार्योदकं वा सेतुं बन्धयेत्। अन्येषां व बध्नतां भूमिमार्गवृक्षोपकरणानुग्रहं कुर्यात्, पुण्यस्थानारामाणां च सम्भूय सेतुबन्धादपक्रमातः कर्मकरबलीवर्दाः कर्म कुर्युः। व्ययकर्मणि च भागी स्यात्। न चाशं लभेत्।[22]

बालक, बूढ़े, रोगी, दुःखी और अनाथ व्यक्तियों को राज्य की ओर से विशेष सहायता दी जाती थी। अनाथ एवं वन्ध्या स्त्री को विशेष संरक्षण मिलता था-

बालवृद्धव्याधितव्यसन्यनाथांश्च राजा बिभृयात्, स्त्रियमप्रजातां प्रजातायाश्च पुत्रान्।[23]

इस प्रकार जनपद के निर्माण में सभी वर्ग के लोगों का योगदान होता था तथा राज्य की ओर से उन्हें विशेष सुविधाएँ प्रदान की जाती थी।

जनपद सीमाओं की रक्षा के लिए भी राजा द्वारा चारों दिशओं में भी युद्धोचित प्राकृतिक दुर्ग का निर्माण करवाया जाता था. ताकि शत्रु पक्ष या राज्य को नष्ट करवाले कोई वयक्ति या समूह प्रवेश न कर सके। ये दुर्ग चार प्रकार के थे-१.औदक २. पार्वत ३. धान्वन तथा ४. वन दुर्ग -

चतुर्दिशं जनपदान्ते साम्परायिकं दैवकृतं दुर्गं कारयेत्, अन्तर्द्वीपं स्थलं वा निम्नावरुद्धम् औदकं, प्रास्तरं गुहां वा पार्वतं निरूदकस्तम्ब मिरिणं वा धान्वनं, खञ्जनोदकं स्तम्भगहनं वा वनदुर्गम्। तेषां नदी पर्वत दुर्गं जनपद्रक्षस्थानं धान्वन दुर्गमटवीस्थानम् आपद्यपसारो वा।[24]

जनपद में निवास करने वाले व्यक्तियों की रक्षा, किसानों को दण्ड, विष्टि (वेगार), कर (टैक्स) आदि तथा पशुओं का चोर, हिंसक जन्तु आदि से रक्षा करने का दायित्व राजा का

---

22 अर्थशास्त्र, २/१७/१, पृ. सं. ७९.

23 वही.

24 अर्थशास्त्र २/१९/३, पृ. सं. ८५.

होता था और व्यापार तथा व्यापारिक मार्गों की सुरक्षा की भी व्यवस्था करना राजा का दायित्व था । इसके अलावा नये निर्माण कार्यों को पूरा करना ही पर्याप्त नहीं समझा जाता था अपितु पूराने, अधूरे, क्षतिग्रस्त कार्यों को पूरा करना व उनकी मरम्मत करवाना तथा उनकी (सेतुबन्ध इत्यादि की) और खानों की रक्षा करना आवश्यक समझा जाता था-

दण्डविष्टिकराबाधैः रक्षेदुपहतां कृषिम् । स्तेनव्यालविषग्राहैर्व्याधिभिश्च पशुव्रजान् ॥

वल्लभैः *कार्मिकैः* स्तेनैरन्तपालैश्च *पीडितम् । शोधयेत् पशुसंघैश्च क्षीयमाणं वणिक्पथम्॥*

एवं द्रव्य द्विपवनं सेतुबन्धमथाकरान् । रक्षेत्पूर्वकृतान् राजा नवांश्चाभिप्रवर्त्तयेत्॥[25]

३.४ उद्योग नीति

किसी भी राष्ट्र को समृद्धशाली बनाने के लिए, देश की अर्थव्यवस्था को सुदृढ करने के लिए जहाँ कृषि-पशुपालन का अत्यधिक महत्त्व है, वहाँ शिल्प, कला एंव कारखानों को उत्कृष्टता की चरम सीमा पर पहुँचना भी अत्यावश्यक है । छोटे-बड़े उद्योगों एवं शिल्प कलाओं के माध्यम से राष्ट्र की समस्त खनिज सम्पदा का ठीक-ठीक उपयोग होता है ।

उद्योगीकरण तथा औद्योगिक विकास को अधिकांशतया आर्थिक विकास का सूचक तथा इंजन माना जाता है । औद्योगिक क्षेत्र का विकास जहाँ एक ओर रोजगार तथा आय सृजन के द्वारा अर्थव्यवस्था में माँग का सृजन करता है वहीं दूसरी ओर देश के तीव्र तथा आत्मनिर्भर आर्थिक विकास की नींव तैयार करने में मदद करता है । अतः कौटिलीय उद्योग नीति को तीन भगों में विभाजित किया जा सकता है-

१.आचार्य कैटिल्य ने अर्थशास्त्र के अन्तर्गत शासन व्यवस्था का आर्थिक ढाँचा औद्योगिक आधार भूमि पर खड़ा किया है । प्रथम सिद्धान्त के अन्तर्गत ऐसे उद्योगों को रखा है, जिन पर राज्य का स्वामित्व हो और जो राज्य द्वारा संचालित एवं संघटित हो । इन उद्योगों की पूँजी (Capital), श्रम (Labour) और प्रबन्ध (Management) का दायित्व राज्य पर

---

[25] अर्थशास्त्र २/१९/३, पृ. सं. ८१.

निर्भर होता था ।[26] इस प्रकार की औद्योगिक अर्थनीति का प्रत्यक्ष उद्देश्य था कि अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उद्योगों पर राज्य का स्वामित्व स्थापित करना तथा अन्ततोगत्वा एक सशक्त, आत्मनिर्भर तथा सर्वसाधन सम्पन्न राज्य की प्रतिष्ठा स्थापित करना था । इस प्रकार के महत्त्वपूर्ण उद्योगों में **सोना, चाँदी, शिलाजीत, ताँबा, शीशा, टिन, लोहा, मणि, लवण** आदि उद्योग आते थे ।[27] इसके अतिरिक्त शराब उद्योग, हथियार उद्योग एवं जाहजरानी उद्योग भी आते थे और व्यापार इसी नीति के अन्तर्गत आता था जो राज्य के नियन्त्रण में था।

२. दूसरे प्रकार के उद्योगों का संबन्ध निजी क्षेत्र से था । इस श्रेणी के उद्योगों में राज्य के नागरिकों को निजी सम्पत्ति रखने के अधिकार को मान्यता दी गयी है । जनता अपनी पूँजी, श्रम, तथा प्रबन्ध द्वारा उद्योगों का संगठन व संचालन कर सकती थी । जनता के स्वामित्व से तात्पर्य जनता के सामूहिक स्वामित्व से नहीं है, बल्कि इन उद्योगों को अपने धन तथा से चलाने वाले व्यक्तियों के नीजी स्वामित्व से है ।[28] ऐसे उद्योगो में कृषि, वस्त्र, शिल्प, नर्तक, गायन[29], गो, अश्व, हस्तिपालन, सुरा, मांस, वेश्यालय, वादन आदि की गणना की जा सकती है । परन्तु इन सब के अपने पृथक् अध्यक्ष होते थे जिनकी देख-रेख में सारा कार्य सम्पन्न होता था ।[30]

३. आचार्य कौटिल्य की औद्योगिक संकल्पना का तीसरा सिद्धान्त समाज ऐसी सुव्यवस्था बनाये रखने से संबन्ध है, जिसके अनुसार राज्य के समस्त उत्पादन (Production), वितरण (Distribution) और उपभोग (Consuption) पर शासन सत्ता का नियन्त्रण बना रहेगा । इन व्यवस्था के उद्देश्य राज्य अर्थबल तथा प्रशासन को शसक्त बनाए रखना है और आर्थिक

---

[26] वाचस्पति गैरोला, *कौटिलीयम अर्थशस्त्रम्,* भूमिका पृ.सं. ५४.

[27] अर्थशास्त्र, २/२८/१२, पृ.सं., १३६-१४२.

[28] डॉ मधूसूदन त्रिपाठी, *कौटिल्य का आर्थिक चिन्तन,* पृ.सं. ४२.

[29] अर्थशास्त्र, ४/७६/१.

[30] *अर्थशस्त्र,* २/३९-४२/२३-२७। पृ. सं. १९२-२११.

क्षेत्र में अवाछंनीय प्रवृत्तियों का नियमन तथा मानव द्वारा मानव शोषण को असम्भव बनाना था ।[31]

३.४.१ उद्योगों का राष्ट्रीय करण

कौटिल्य की औद्योगिक नीति काफी हद तक समाजवाद तथा राष्ट्रीयकरण को बढ़ावा देने वाली थी। प्रशासनिक संगठन का बहुत बड़ा हिस्सा राज्य के लिए विविध प्रकार की सम्पत्तियों की व्यवस्था करने तथा उसका उपयोग करने में लगा रहता था । इस सम्पत्ति का प्रशासन, व्यापारिक संस्थाओं के ढंग पर चलाया जाता था ।[32] राज्य के पास विशाल भूक्षेत्र तथा वन क्षेत्र थे । आयात-निर्यात का अधिकांश कार्य राज्य स्वयं करता था और इस प्रकार दलालों का मुनाफा स्वयं लेता था । विविध प्रकार के कच्चे माल माल से नाना प्रकार की वस्तुएँ तैयार करने के लिए राज्य की ओर से उद्योग स्थापित किए गए थे। जैसे- वस्त्र उद्योग[33], धातु उद्योग[34], मदिरा उद्योग[35], औषधीय उद्योग[36] इत्यादि। चूँकि कर के रूप में विपुल परिमाण में कृषि पैदावार मिलती थी अतः अकाल के समय उपयोग के लिये, कर्मचारियों के वेतन तथा राजकीय कारखानों मे कच्चे माल के रूप में प्रयोग करने के लिए राजधानी में केन्द्रीय अन्न भण्डार भी बनाया गया था।[37]

३.४.२ राज्य के विकास में बाधा उत्पन्न करने वाले तत्त्वों का निषेध

आचार्य कौटिल्य ने कुछ चीजों का प्रवेष करने से निषेध बताया है । जो न केवल औद्योगिक विकास में बाधा पहुँचाती हैं बल्कि राज्य के विकास में भी बाधा पहुँचाती हैं। जैसे-

---

[31] डॉ मधूसूदन त्रिपाठी, *कौटिल्य का आर्थिक चिन्तन,* पृ.सं. ४२.

[32] डॉ मधूसूदन त्रिपाठी, *कौटिल्य का आर्थिक चिन्तन,* पृ.सं. ४२.

[33] *अर्थशास्त्र,* २/३९/२३ पृ.सं १९२.

[34] *अर्थशास्त्र,* २/२८/१२ पृ.सं १३६.

[35] *अर्थशास्त्र,* २/४१/२५ पृ.सं २००.

[36] *अर्थशास्त्र,* २/३३/१७ पृ.सं १६८.

[37] *कौटिल्य का आर्थिक चिन्तन,* पृ.सं. ४२ .

१.पुरुष को अपने पुत्र व स्त्री के साथ जीवन निर्वाह करना चाहिए। यदि जीवन निर्वाह किए बिना सन्यास ग्रहण करता था तो राजा उसे प्रथम दण्ड देता था। यही दण्ड उस पुरूष को भी दिया जाता था जो अपनी पत्नी को सन्यासिनी बनने के लिए दबाव डालता था। या मनुष्य वृद्धावस्था में धर्माधिकारी पुरूषों से अनुमति प्राप्त करके संन्यास ग्रहण कर सकता था-

पुत्रदारमप्रातिविधाय प्रव्रजतः पूर्वः साहसदण्डः, स्त्रियं च प्रव्रजायतः। लुप्तव्यवायः प्रव्रेजेदापच्छ्य धर्मस्थान्, अन्यथा नियम्येत्।[38]

२.वानप्रस्थ के अतिरिक्त अन्य कोई सन्यासी को जनपद में नहीं रहना चाहिए तथा राजभक्त जनसंघ के अतिरिक्त कोई दूसरी संस्था या दूसरा संघ राज्य में विकसित नहीं होने दिया जाना चाहिए, जो द्रोह या फूट फैलाने वाला प्रतीत होता हो-

वानप्रस्थादन्य प्रव्रजित भावः सुजातादन्य सङ्घेः, समुत्थायकात् अन्यः समयानुबन्धो वा नास्य जनपदमुपनिवेशयेत्।[39]

३.गाँवों नाट्यगृह, विहार तथा क्रीड़ाशालाएँ नहीं होती थी तथा नट, नर्तक, वादक, गायक, कथावाचक तथा नक्काल और इनकी मण्डलियाँ समय नष्ट करने वाली समझी जाती थी। जिनसे खेती के विकास में बाधा आती थी-

न च तत्ररामा विहारार्थाः शालाः स्युः। नटनर्तनगायनवादकवाग्जीवनकुशीलवा वा न कर्मविघ्नं कुर्युः।[40]

परन्तु यहाँ पर कौटिल्य के विषय में सोचना गलत होगा कि वे मनोरंजन के विरूद्ध थे। क्योंकि वे एक स्थान पर स्वयं लिखते हैं कि व्यक्ति को अपना जीवन सुखविहीन व दुःखों में डुबोकर नहीं रखना चाहिए क्योंकि उनदिनों यूनानी नाट्य मण्डलियों के भेष में गुप्तचर

---

38 *अर्थशस्त्र,* २/१७/१, पृ.सं. ८०.

39 वही.

40 *अर्थशस्त्र,* २/१७/१, पृ.सं. ८१.

गिरोह तथा भिक्षु- भिक्षुणियों के भेष में लोग घूमा करते थे कि इन नव उपनिवेशों की स्थापना का मुख्य उद्देश्य अर्थात् आर्थिक उत्पादन ही संदेहास्पद हो जाता था । अतः इन नाटक मण्डलियों पर प्रतिबन्ध लगाना सर्वथा स्वाभाविक हो गया था।[41]

इस प्रकार तत्कालीन समय में पूरे देश में छोटे- बड़े उपनिवेश बसाये जा रहे थे जो औद्योगिक विकास तथा राज्य कोष की समृद्धि का सूचक माना जाता था । जनसंख्या को यथा सम्भव अधिक से अधिक सुविधाएँ प्रदान की जाती थी । बाद में नव उपनिवेशों की स्थापना करना राजसत्ता का सर्वोच्च एवं प्राथमिक कर्तव्य बन गया ।

३.५ बाजार नीति

कौटिल्य के समय में अर्थव्यवस्था का मजबूत आधारभूत ढाँचा था। तत्कालीन समय में सुनियोजित बाजार व्यवस्था के संकेत मिलते है। उस समय राजा के द्वारा खान से उत्पन्न सोना-चाँदी आदि के विक्रय-स्थान, चन्दन आदि उत्तम काष्ठ के बाजार, हाथियों के जंगल, पशुओं की वृद्धि के स्थान, आयात-निर्यात के स्थान, जल-थल के मार्ग और बड़े-बड़े बाजारों की व्यवस्था करायी जाती थी।

आकरकर्मान्त द्रव्यहस्तिवन ब्रजवणिक्पथ प्राचारान्वारिस्थलपथ पण्यपत्तनानि च निवेशयेत्। [42]

इस प्रकार कच्चे माल से तैयार माल की खपत तथा जनता तक की पहुँच को सरल बनाने के लिए बाजार तथा मण्डियों के विकास पर जोर दिया जा रहा था।

३.६ व्यापार- नीति

औद्योगिक विकास के पश्चात् कौटिल्य ने व्यापार पर जोर दिया। क्योंकि तैयार कच्चे माल को लोगों तक पहुँचाना है । इससे राज्य के दो लाभ होगा-

---

[41] आचार्य दीपंकर, *कौटिल्य कालीन भारत,* पृ.सं १०३.

[42] अर्थशास्त्र, २/१७/१ पृ. सं. ७९।

१.राज्य को अत्यधिक मात्रा में धन की प्राप्ति होगी। इसी लिये आचार्य कौटिल्य व्यवसाय को वार्ता विद्या के अन्तर्गत समावेश किया है तथा इसे धन-धान्य-हिरण्य आदि प्रदान करने वाली विद्या की संज्ञा दी है। इसका सहारा लेकर सभी पक्षों को वश में कर सकता है-

कृषि पशुपाल्ये वाणिज्या च वार्ता। धान्यपशुकुप्यविष्टिप्रदानादौपकारिकी । तथा स्वपक्षं परपक्षं च वशीकरोति कोशदण्डाभ्याम्।[43]

२. लोगों तथा दूसरे देशों के साथ आपसी संबन्ध मधुर होगा । क्योंकि कौटिल्य एक स्थान पर कहते है कि व्यापार का मूल उद्देश्य है आम जनता का कल्याण तथा जनहित के विरूद्ध प्राप्त महान लाभ को भी त्याज्य करने के लिए कहा है-

स्वभूमिजानां राजपण्यानामेकमुखं व्यवहारं स्थापयेत्। परभूमिजानामनेकमुखम् ।उभयं च प्रजानामनुग्रहेण विक्रापयेत् । स्थूलंमपि च लाभं प्रजानामौपघातिकं वारयेत् । अजस्रपण्यानां कालोपरोधं संकुलदोषं वा नोत्पादयेत्।[44]

अतः तत्कालीन समय में व्यापार तीन प्रकार से चलता था-

१. फूटकर व्यापार २.राजकीय व्यापार ३. थोक व्यापार।

३.६.१ फुटकर व्यापार

फूटकर वाणिज्य करने वाले दुकानदार या तो एक ही स्थान या संस्था में बैठकर व्यापार करते थे या घूम-घूम कर एवं फेरी देकर । परन्तु वे राजकीय क्षेत्र या थोक व्यापारियों से पण्य लेकर वाणिज्य करते थे ।[45]

फुटकर वस्तुओं को वेचने वाले व्यापारी देश काल के अनुसार अपने माल का दाम का वसूल करके थोक व्यापारियों के माल का मूल्य और सूद (व्याज) दोनों अदा करते थे, जबकि वह

---

[43] अर्थशास्त्र, १/१/३.

[44] अर्थशास्त्र, २/३२/१६ पृ.सं. १६४.

[45] आचार्य दीपकंर, *कौटिल्य कालीन भारत*, पृ. सं. १३०.

माल उन्हें बिना अग्रिम मूल्य चुकता किए ही मिल जाता था । शेष नियम उपनिधि के समान थे-

वैयापृत्य विक्रयस्तु- वैयापृत्यकरा यथादेशकालं विक्रीणानाः पण्यं यथाजातं मूल्यमुदयं च दद्युः। शेषं उपनिधिना व्याख्यायतम्। [46]

यदि पण्य का मूल्य गिर जाये तो उसका मूल्य और सूद दोनों ही उसी अनुपात से कम हो जाते थे । ऐसा केवल इसलिए किया जाता था जिससे फुटकर व्यापारियों का योगक्षेम चलता रहे। परन्तु यदि थोक व्यापारियों व बड़े व्यापारियों के बीच पहले ही यह तय हो जाता था कि माल का दाम गिरने या बढ़ने पर उसी अनुपात से मूल्य गिराकर या बढ़ाकर ही माल बेचेगें तो उसी मूल्य पर बेचते हुए छोटे व्यापारी, बड़े व्यापारियों को मूल्य दें, व्याज नहीं-
यथासंभाषितं वा वीक्रीणाना नोभयमधिगच्छेयुः । मूल्यमेव दद्युः । अर्धपतने वा परिहीणं यथापरिहीणं मूल्यमूनं दद्युः। [47]

आमतौर पर कुल मिलाकर छोटे और फुटकर व्यापारियों के लिए राज्य में सहानुभूति पूर्ण नियम प्रचलित थे। कारण वश माल का दाम एकदम गिर जाने पर थोक व्यापारी उसे भुगतान के लिए बाध्य नहीं कर सकता था। परन्तु इस सुविधा का अनुचित लाभ उठाने नहीं दिया जाता था । छोटे व्यापारियों को यह सुविधा भी थी कि वे पण्य का छीजन (क्षय) निकालकर मूल्य अदा करे।

३.६.२ राजकीय व्यापार

खेती व पशुपालन के समान व्यापार के क्षेत्र में राज्य का भाग न केवल महत्त्वपूर्ण था बल्कि राज्य स्वयं भी बहुत बड़ी व्यापारिक संस्था थी।राज्य की ओर से जो सर्वोच्च अधिकारी

---

46 अर्थशस्त्र, २/६८/१२, पृ. सं. ३०७.

47 अर्थशास्त्र, ३/६८/१२, पृ. सं.३०९.

व्यापार की देखरेख तथा निजी व्यापारियों को पण्य अनुमिति (लायसेंस) देने के लिए नियुक्त था, उसे पण्याध्यक्ष कहा जाता था।[48]

पण्याध्यक्ष अपनी ओर से प्रत्येक मण्डी में प्रतिनिधि नियुक्त किया करता था जो कि संस्थाध्यक्ष कहलाता था । इसी की देखरेख में व्यक्तिगत व्यापारी बाजारों में अपना व्यापारिक कारोबार चलाते थे । इसके अधिकार बहुत व्यापक थे । वह राजकीय क्षेत्र में उत्पन्न पण्य के विक्रय की व्यवस्था करता था तथा व्यापारिक क्षेत्र में होने वाली आय के लिए सीधे राज्य के प्रति उत्तरदायी था-

संस्थाध्यक्षः पण्यसंस्थायां पुराणभाण्डानां स्वकरणविशुद्धानाम् अधानं विक्रयं वा स्थापयेत्। तुलामानभण्डानि चावेक्षेत, पौतवापचारात्।[49]

पण्याध्यक्ष धोखेबाजी व मुनाफाखोरी पर नियन्त्रण रखता था । इसके लिए वह थोक कीमतें निश्चित करता था तथा उस पर उचित लाभ रखकर फुटकर कीमतें निश्चित करता था । इस लाभ की दर देशी वस्तुओं के लिये 5% तथा विदेशी वस्तुओं के लिये 10% थीं । यदि कोई व्यापारी इस दर से अधिक मुनाफा लेता था तो उस पर भारी अर्थदण्ड किया जाता था । कीमतों के बारे में नियम यह था कि वे इतनी अधिक नहीं होनी चाहिए कि जनता का भार वहन कर सके और न शसन को जनता पर भार डालकर मुनाफा कमाना चाहिए- *अनुज्ञातक्रयादुपरि चैषां स्वदेशीयानां पण्यानां पञ्चकं शतमाजीवं स्थापयेत्। परदेशीयानां नाम दशकम्। ततः परमर्धं वर्धयतां क्रये विक्रये वा भावयतां पणशते पञ्चशते द्विशतो दण्डः। तेनार्घवृद्धौ दण्डवृद्धिर्व्याख्याता।*[50]

इस प्रकार से पण्याध्यक्ष तथा संस्थाध्यक्ष द्वारा व्यापार पर नियंत्रण रखा जाता था।

---

[48] अर्थशास्त्र, २/३२/१६, पृ. सं.१६४.

[49] अर्थशास्त्र, ४/७७/२, पृ. सं.३५३.

[50] अर्थशास्त्र, ४/७७/२, पृ. सं.३५४.

३.६.३ थोक व्यापार

थोक व्यापारी या तो राजकीय क्षेत्र का पण्य ठेके के रूप में लेते थे या फिर देश विदेशों से एकत्र करते थे । सामान्यतया अनेक थोक व्यापारी मिलकर एक संघ बना लेते थे, जिसे श्रेणी कहा जाता था ।[51] जातक कथाओं में एक ऐसे व्यक्ति का उल्लेख आता है जो कि ५०० श्रेणियों का मुख्य प्रधान था । जातक कथाएँ ऐसे व्यापार प्रसंगों से सरोबार है ।[52] ये स्थल मार्ग तथा जल मार्ग दोनों से व्यापार करते थे ।[53]

प्राचीन आचार्यों के मतानुसार जल मार्ग श्रेष्ठ है क्योंकि उसमें श्रम तथा व्यय अधिक नहीं करना पड़ता है-

तत्रापि "वारिस्थलपथयोः वारिपथ श्रेयान्, अल्पव्ययव्यायामः प्रभूतपण्योदयश्च" इत्याचार्याः। [54]

आचार्य कौटिल्य ने जल की अपेक्षा स्थल मार्ग को श्रेष्ठ माना हैं क्योकि विपत्तिकाल में रोका जा सकता है तथा सभी ऋतुओं में उससे जाना आना भी नहीं हो सकता है-

नेति कौटिल्यः। संरुद्धगतिरसार्वकालिकः प्रकृष्टभययोनिर्निष्प्रतिकारश्च वारिपथः। विपरीतः स्थलपथः।[55]

स्थलमार्ग में भी उत्तरापक्ष की अपेक्षा दक्षिणापथ को श्रेष्ठ माना है तथा क्योंकि उत्तरापथ पर जाने से काम्बल, खालें, हाथी दाँत, कस्तूरी अश्वादि प्राप्त होते हैं जबकि दक्षिण पथ पर शंख, हीरे, मणि, मुक्ता, स्वर्ण आदि बहुमूल्य वस्तुएं मिलती हैं-

कम्बलाजिनाश्व पण्यवर्ज्याः शंखवज्रमणिमुक्ता स्वर्णपण्याश्च प्रभूततरा दक्षिणा पथे।[56]

---

51 डॉ मधूसूदन त्रिपाठी, *कौटिल्य का आर्थिक चिन्तन,* पृ.सं. ३२.

52 *जातक कथाएँ,* १/९२,३४८, २/२७७, ३/२८८, ४०४.

53 *अर्थशास्त्र,* २/४४/२८ पृ.सं. २१२.

54 *अर्थशास्त्र,* ७/११६/१२, पृ. सं. ५१३.

55 *अर्थशास्त्र,* ७/११६/१२, पृ. सं. ५१३.

इस प्रकार निश्चित रूप से प्रचुर मात्रा में पण्य का व्यापार करने वाला वणिक वर्ग ही इन मार्गों पर जाकर देश में उपर्युक्त वस्तुओं को सुलभ कराता था।

३.६.४ विदेशी व्यापार

तत्कालीन समय में भारत विदेशों से भी व्यापारिक संबन्ध अच्छा था । कौटिल्य ने यह मत व्यक्त किया है कि विदेशी माल को प्रोत्साहन देना चाहिए तथा उनसे यथा सम्भव नौका किराया, संरक्षण व्यय आदि नहीं लिया जाना चाहिए । उन्हें यह भी आश्वासन दिया चाहिए कि भविष्य में भी उन्हें ऐसी सुविधाएँ प्राप्त होती रहेंगी ।[57]

कौटिल्य नें आयात की अपेक्षा निर्यात पर अधिक जोर दिया है परन्तु माल का निर्यात करने से पूर्व उसमें निहित कारणों पर भी विशेष ध्यान दिया जाता था तथा उन्होनें यह मत व्यक्त किया है कि अगर विदेश में माल पहुँचने के बाद अलाभ की स्थिति उत्पन्न होती है तो लाभप्रद परिस्थितियों की प्रतिक्षा करे अथवा अपने माल के बदले में वहाँ का लोकप्रिय माल लाकर लाभ संकलित करना चाहिए-

असत्युदये भाण्डनिर्वहणेन पण्यप्रतिपण्यार्घेण वा लाभं पश्येत् । ततः सारपादेन स्थल व्यवहारमध्वना क्षेमेण प्रयोजयेत्।[58]

तत्कालीन समय में भारत का व्यापार मुख्यतः पश्चिमी एशिया, मिस्र, चीन तथा श्रीलंका से होता था। चीन से रेशम प्राप्त होता था तथा बंगाल सफेद रेशमी वस्त्र। ताम्रपर्णी से मोतियाँ, नेपाल से चमणा, सीरिया से मदिरा एवं पश्चिम एशिया से घोड़ों का आयात होता था। भारत से मिस्र को हाँथी दाँत कछुए, सीपियाँ, मोती, रंग, नील और बहुमूल्य लकड़ी निर्यात

---

[56] *अर्थशास्त्र,* ७/११६/१२, पृ. सं. ५१४.

[57] अर्थशास्त्र, २/३२/१६, पृ. सं. १६४.

[58] अर्थशास्त्र, २/३२/१६, पृ. सं.१६५.

होती थी ।[59] चन्दन भारत (असम) में तथा दक्षिण-पूर्व एशिया- जावा, वर्मा, मालवा इत्यादि देशों में प्राप्त होता था-

दैवसभेयं रक्तं पद्मगन्धि। जावकं च । जोङ्गकं रक्तं रक्तकालं वा स्निग्धम्। तौरूपं च। मालेयकं पाण्डुरक्तम् ।[60]

मूँगा अलकनन्द नामक स्थान से तथायवनद्वीप में समुद्र के किनारे विवर्ण नामक स्थान से लाया जाता था-

प्रबालकं आलकनन्दं वैवर्णिकं च रक्तं पद्मरागं च करटगर्भिणिकावर्जमिति।[61]

३.७ बैंकिंग नीति-

तत्कालीन समय में अर्थशास्त्र में बैंकिंग व्यवस्था के का पता चलता है जो विकास मान व्यापार तथा उद्योग की आवश्यकताओं को सम्पूर्ण करने में सक्षम है । अच्छे स्वभाव वाले प्रतिष्ठित व्यक्ति, स्वयं की पूँजी से कार्य करने वाले, प्रत्यक्ष लेन-देन करने वाले समाज के विश्वस्त व्यक्ति ही बैंकिंग का कार्य करते थे। अमूमन ये शिल्पकार होते थे जिनका संघ श्रेणी कहलाता था-

अर्थ्यप्रकाराः कारुशासितारः सन्निक्षेप्तारः स्ववित्तकारवः श्रेणीप्रमाणा निक्षेपं गृह्णीयुः। विपत्तौ श्रेणी निपेक्षं भजेत। निर्दिष्टदेशकालकार्यं च कर्म कुर्युः। अनिर्दिष्टदेशकाल कार्यापदेशम्।[62]

कौटिल्य नें सूदखोरी तथा महाजनी व्यस्था का समाज पर हावी न हों इसके लिए व्याज दर निश्चित कर दिया था । सामान्यतया सौ पण पर सवा पण व्याज प्रतिमास लिया जाता था। इसी सौ पण पर व्यापारी लोगों से पाँच पण, जंगल में रहने या वहाँ व्यापार करने वालों से

---

[59] एस. के. पाण्डे, प्राचीन भारत, पृ. सं. ३०४.

[60] अर्थशास्त्र, २/२७/११, पृ. सं.१३०.

[61] अर्थशास्त्र, २/२७/११, पृ. सं.१२९.

[62] अर्थशास्त्र, ४/७६/१, पृ. सं.३४६.

दस पण और समुद्र के व्यापारियों से बीस पण व्याज लिया जाता था । निर्धारित दर से अधिक व्याज लेने वालों को प्रथम साहस दण्ड दिया जाता था। जो लोग इस प्रकार की अनुचित दर पर साक्षी होते थे उनसे आधा दण्ड लिया जाता-

सपादपणा धर्म्या मासवृद्धिः पणशतस्य। पञ्चपणा व्यहारिकी । दशपणा कान्तारगाणाम्। विंशतिपणा सामुद्राणाम् । ततः परं कर्तुः कारयितुश्च पूर्वः साहसदण्डः । श्रोतॄणामेकैकं प्रत्यर्धदण्डः।[63]

कृषि के क्षेत्र में भी कुछ सुनिश्चित नियम भी प्रचलित थे । यदि किसी व्यक्ति को अनाज दिया जाय तो व्याज के रूप में अनाज, उधार के रूप में दिये गए अनाज के आधे से अधिक नहीं हो सकता था । यदि व्याज फसल के बाद अदा की जाए तो ऋण का हिसाब नकद रकम के रूप में परिवर्तित कर दिया जाता था-

धान्यवृद्धिः सस्यनिष्पत्तावुपार्धा, परं मूल्यकृता वर्धेत । प्रक्षेपवृद्धिरुदयादर्धम् । सन्निधानसन्ना वार्षिकी देया ।[64]

यदि ऋण देने वाले (धनिक) तथा ऋण लेने वाले (धारणी) के आपसी सौदे से राज्य की भलाई होती हो तो शसन द्वारा अनुबन्ध के चरित्र पर निगरानी रखी जाती थी-

राजन्ययोगक्षेमवहे तु धनकारणिकयोश्चरित्रमेवेक्षेत ।[65]

कौटिल्य कालीन भारत में जो लोग दीर्घ काल यज्ञ कार्य में लगे हों, रोगग्रस्त, गुरुकुल में अध्ययन करने वाले, बालक और अशक्त आदि व्यक्तियों के व्याज पर ऋण नहीं जोड़ा जाता था। यदि कर्जदार अपने कर्ज की अन्तिम किश्त की अदायगी करता है, परन्तु ऋणदाता उसे न ले तो उसे दण्डित किया जाता था । यदि ऋण वापस न लेने पर कोई विशेष कारण हो तो वह रकम बिना व्याज के कहीं और जमा कर दी जाती थी-

---

[63] अर्थशास्त्र, ३/६७/११, पृ. सं.२९९ .

[64] अर्थशास्त्र, ३/६७/११, पृ. सं.२९९ .

[65] अर्थशास्त्र, ३/६७/११, पृ. सं.२९९ .

दीर्घसत्रव्याधिगुरुकुलोपरुद्धं बालमसारं वा नर्णमनु वर्धेत् । मुञ्चमानमृणमप्रतिगृह्णतो द्वादशपणो दण्डः। कारणापदेशेन निवृत्तवृद्धिकमन्यत्र तिष्ठेत् ।[66]

३.७.१ ऋण का समय

तत्कालीन समय में कोई ऋण दस वर्षों के अन्तर्गत ही वसूल किया जाता था, उसके बाद उसे वसूल नहीं जा सकता था तथा उत्तमर्ण का उस पर अधिकार नहीं रह जाता था । यदि कोई ऋण देने वाला- बूढ़ा, बीमार, विपत्तिग्रस्त, प्रवासी, देशत्यागी या राजकार्य से बाहर गया व्यक्ति हो तो उसके लिए यह समय सीमा लगू नहीं होती थी-

दशवर्षोपेक्षितमृणमप्रतिग्राह्यमन्यत्र बालवृद्धव्याधितव्यसनिप्रोषितदेशत्यागराज्य विभ्रमेभ्यः।[67]

यदि ऋण लेने वाला मर जाये तो उसका पुत्र या उत्तराधिकारी या जमानतकर्त्ता उस ऋण को अदा करते थे । एक बालक जमानत देने वाला नहीं हो सकता था-

प्रेतस्य पुत्राः कुसीदं दद्युः। दायादा वा रिक्थहराः । सहग्राहिणः प्रतिभुवो वा। न प्रतिभाव्यमन्यत्। असारं बालप्रतिभाव्यम्।[68]

३.७.२ ऋणों की प्राथमिकता का क्रम

यदि एक व्यक्ति पर अनेक पर अनेक व्यक्तियों का कर्ज हो तो उस पर एक साथ अनेक मुकदमें चलाये जा सकते थे। अशोधन की दशा में ऋणों का भुगतान उसी क्रम में होना चाहिए जिस क्रम से उन्हें लिया गया है । यदि उस पर राजकीय या ब्राह्मण का कर्ज निकले तो पहले उसी का भुगतान होना चाहिए-

---

66 अर्थशास्त्र, ३/६७/११, पृ. सं.३०० .

67 अर्थशास्त्र, ३/६७/११, पृ. सं.३००.

68 अर्थशास्त्र, ३/६७/११, पृ. सं.३००.

नानर्णसमवाये तु नैकं द्वौ युगपदभिवदेयाताम् अन्यत्र प्रतिष्ठमानात् । तत्रापि गृहीतानुपूर्व्या राजश्रोत्रियद्रव्यं वा पूर्वं प्रतिपादयेत् ।[69]

पति द्वारा लिए गए ऋण को यदि पत्नि चुकाना नहीं चाहती तो उस पर किसी प्रकार का जोर दबाव नहीं डाला जा सकता, परन्तु यदि पत्नी कर्ज ले तो उसे पति से वसूला जा सकता था। [70]

यद्यपि राज्य ऋण देने में उदार था, वांछनीय कारण होने पर ऋण की वसूली अल्प या दीर्घकाल के लिए टाली जा सकती थी, परन्तु ऋण की वसूली अवश्य होती थी । किसी भी दशा में ऋण माफ़ नहीं किया जाता था क्योंकि यह समझा जाता था कि इससे लोगों में ऋण भुगतान के प्रति प्रमाद उत्पन्न होगा और लोग अनुत्पादक कार्यों के लिए ऋण लेना आरम्भ कर देंगे। इससे उद्यम की भावना हतोत्साहित होगी ।[71]

इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि ऋण की व्याज दरें अवधि, जोखिम, प्रतिभूत से भी प्राप्त होती थीं । प्रतिभूति रखकर ऋण लेने पर व्याज दर कम होती थी । जोखिम की दशा में व्याज दर अधिक होती थी । इसीलिए समुद्री व्यापार के लिए दिये जाने वाले ऋण की व्याज दर अधिक तथा सामान्य व्याज दर कम रखी गयी थी।

३.८ सामाजिक नीतियाँ

कौटिल्य ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति एक सशक्त, संगठित और उन्नत राष्ट्र के निर्माण में लगाया । कौटिल्य नें औद्योगिक एवं व्यापार नीति तथा बैंकिंग व्यवस्था के साथ-साथ एक सभ्य एवं सुसंस्कृत समाज स्थापित करने पर जोर दिया । कौटिल्य ने सामाजिक जीवन को सुसंस्कृत बनाने के लिये उत्तम शिक्षा, त्वरित व सस्ती चिकित्सा, अकाल-बाढ़ आदि विपदाओं से संरक्षण, पेयजल की व्यस्था, उपवन व बगीचों की स्थापना, सस्ते-स्वस्थ-प्ररणास्पद-कार्य

---

[69] अर्थशास्त्र, ३/६७/११, पृ. सं.३०१.

[70] अर्थशास्त्र, ३/६७/११, पृ. सं.३०१.

[71] डॉ मधुसूदन त्रिपाठी, कौटिल्य का आर्थिक चिन्तन, पृ. सं. ३६.

क्षमता वृद्धि करने वाले मनोरंजन की व्यवस्था दीन- अनाथ-व्याधिग्रस्त लोगों की सहायता आदि प्रस्तुत करने पर विशेष बल दिया है।

इस संबन्ध में कौटिल्य का यह का यह कथन स्मरणीय है कि राज्य को अपने गुणों से जनता को आच्छादित कर देना चाहिए तथा सदैव धर्म-कर्म-अनुग्रह-दान तथा सम्मान आदि श्रेष्ठ कार्यों से जानता के अनुकूल कल्याणकारी परियोजनाएँ संचालित करते रहना चाहिए- *नवमाप्य लम्भं परदोषान् स्वगुणैश्छादयेत् गुणान् गुणद्वैगुण्ये। स्वधर्मकर्मानुग्रहपरिहार दानमानकर्मिभिश्च प्रकृतिप्रियहितान्यनुवर्तेत।*[72]

३.८.१ शिक्षा

कौटिल्य ने शिक्षा की महत्ता, उपयोगिता तथा उसकी व्यवस्था की ओर भी संकेत किया है। उनका मत है कि अशिक्षित व्यक्ति शीघ्र ही दुर्गणों का शिकार हो जाते हैं क्योंकि अशिक्षा के कारण दुर्वसनों का पता नहीं चल पाता-

अविद्याविनयः पुरुषव्यसनहेतुः । अविनीतो हि व्यसनदोषान्न पश्यति।[73]

अतः राज्य का कर्तव्य है कि शिक्षा के प्रचार प्रसार से प्रजा को विनम्र व शिक्षित बनाए-

वृद्धसंयोगेन प्रज्ञां, चारेण चक्षुरुत्थानेन योगक्षेमसाधनं, कार्यानुशासनेन स्वधर्मस्थापनं, ***विनयं विद्योपदेशेन,*** *लोकप्रियत्त्वमर्थसंयोंगेन, हितेन वृत्तिम्।*[74]

आचार्य कौटिल्य ने कहा है कि बालकों को शिक्षित करना अनिवार्य है क्योंकि जैसे मिट्टी का नया बर्तन घी-तेल आदि जिस भी नये द्रव्य का स्पर्‌श पाकर उसी को सोख लेता है । ठीक वैसे ही अपरिपक्क बुद्धि वाले बालक को जो भी सिखाया जाता है वह शास्त्र उपदेश की तरह अमिट रूप से बुद्धि में जमा लेता है, अतः सरल मति बालकों को धर्म- अर्थ का उपदेश किया

---

72 अर्थशास्त्र, १३/१७६/५, पृ. सं. ७३१.

73 अर्थशास्त्र, ८/१२९/३, प्. सं. ५६६ .

74 अर्थश्स्त्र, १/३/६ पृ.सं. १८.

जाना चाहिए, अधर्म व अनर्थ का नहीं, अन्यथा वह गलत रास्ते पर चला जायेगा।शिक्षा में सिद्धान्त व व्यहार दोनों का समावेश होना चाहिए-

महादोषमबुद्धबोधनमिति कौटिल्यः। नवं हि द्रव्यं येन येनार्थजातेनोपदिह्यते तत्दाचूषति। एवमयं नवबुद्धिर्यद्यद् उच्यते तत्तत् शस्त्रोपदेशम् इवाभिजानाति। तस्माद् धर्मं अर्थं चास्योपदिशेन्नाधर्ममनर्थं च।[75]

कौटिल्य ने शिक्षा के विषय में कहा है कि मुण्डन संस्कार के बाद बालक को भाषा (वर्णमाला) तथा गणित (अङ्कमाला) सिखाया जाय। उपनयन के बाद सदाचारी विद्वान् आचार्यों उसे त्रयी (ऋक्, साम व यजुर्वेद) व आन्विक्षिकी (अध्यात्म व दर्शन) शिक्षा दें। विविध विशेषज्ञ जैसे- विभागीय अध्यक्ष वार्ता (कृषि-पशुअपालन- उद्योग-व्यापार आदि) के विषय में बताएँ तथा वक्ता तथा प्रयोक्ता विशेषज्ञों (संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव आदि आचर्यों) से दण्डनीति की शिक्षा ग्रहण करे-

वृत्तचौलकर्मा लिपिं संख्यानं चोपयुञ्जीत । वृत्तोपनयनः त्रयीमान्वीक्षकीं च शिष्टेभ्यः, दण्डनीतिं वक्तृप्रयोक्तृभ्यः ।[76]

सोलह वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य (शिक्षा) का पालन करने के बाद यानि शिक्षा प्राप्ति के बाद समावर्तन संस्कार होता था तथा शिष्य से यह अपेक्षा की जाती थी कि वह समस्त जीवनभर विद्वानों तथा विद्यावृद्ध पुरुषों के संसर्ग से अपने ज्ञान को नवीन व संवर्धित करता रहेगा-

ब्रह्मचर्यं चाषोडशाद्वर्षात् । अतो गोदानं दारकं च । अस्य नित्यश्च विद्यावृद्ध संयोगो विनयवृद्धयर्थं तन्मूलत्वाद् विनयस्य।[77]

---

75 अर्थशस्त्र, १/१२/१६ पृ.सं. ५५.

76 अर्थशस्त्र, १/२/४ पृ.सं. १४.

77 वही १/२/४ पृ. सं. १४.

३.८.२ चिकित्सा

जनस्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए उत्तम चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवाओं की स्थापना की गयी थी जो चिकित्सा सेवाओं को सर्वसुलभ बनाती थी। चिकित्सक चिकित्सा क्रम में यदि किसी घातक किस्म की बिमारी का पता चले तो तुरन्त इसकी सूचना नगर अधिकारियों को देना उसका कर्तव्य समझा जाता था।[78]

यदि कोई शल्य चिकित्सक किसी ऐसे रोगी की चिकित्सा करे जिसके घाव सन्देहास्पद हों या घातक औषधियाँ बनाने वाले किसी व्यक्ति का पता चले तो इसकी सूचना गोप-स्थानिक आदि अधिकारियों को देना उसका कर्तव्य समझा जाता था-

चिकित्सकः प्रच्छन्नव्रणप्रतीकारयितारमपथ्यकारिणं च गृहस्वामी च निवेद्य गोपस्थानिकयोः मुच्यते। अन्यथा तुल्यदोषः स्यात्।[79]

राजा को सूचित के बिना यदि कोई चिकित्सक किसी का रोगी का इलाज करता है, जिसके मरने की संभावना हो या गलत शल्य चिकित्सा के फलस्वरूप यदि कोई रोगी मर जाता था या किसी अंग से वंचित होना पड़ता था तो चिकित्सक को, अपराध प्रमाणित होने पर दण्डित किया जाता था-

भिषजः प्राणाबाधिकम् अनाख्यायोपक्रममाणस्य विपत्तौ पूर्वः साहसदण्डः। कर्मापराधेन विपत्तौ मध्यमः। मर्मवेधवैगुण्यकरणे दण्डपारुष्यं विद्यात्।[80]

यही आचार संहिता पशु- चिकित्सकों के लिए भी थी- *तेन गोमण्डलं खरोष्ट्रमहिषमजाविकं च व्याख्यातम्।*[81]

चिकित्सकों में भी विशेषज्ञों कि निम्न श्रेणीयाँ होती थी-

---

[78] डॉ मधुसूदन त्रिपाठी, कौटिल्य का आर्थिक चिन्तन, पृ. सं. ९४.

[79] अर्थशास्त्र, २/३६/१० पृ. सं. २४६ .

[80]अर्थशास्त्र, ४/७६/१ पृ. सं. ३५०.

[81] अर्थशास्त्र, २/४६/३० पृ. सं. २४६.

१.साधारण चिकित्सक।

२. विष संबन्धी रोगों के चिकित्सक- इसका मुख्य कार्य था कि जो की भोजन आदि सामाग्री दी जा रही है उसमें विष का पता लगाना-

तस्मादस्य जाङ्‌लीविदो भिषजश्चासन्नाः स्युः । भिषग्भैषज्यागारादास्वादविशुद्धमौषधं गृहीत्वा पाचकपोषकाभ्याम् आत्मना च प्रतिस्वाद्य राज्ञे प्रयच्छेत् । पानं पानीयं चौषधेन व्याख्यात्म्।[82]

३. प्रसूति कार्य कार्य का विशेषज्ञ।[83] ४. शल्य चिकित्सक।[84]

५. सैन्य चिकित्सक।[85] ६. पशु चिकित्सक।[86]

रोगों के फ़ैल जाने पर उनकी रोकथामके लिए विशेष उपाय किए जाते थे। चिकित्सक नगर में घूम-घूम कर दवाएं बांटते थे तथा साधु-संत इनके निवारण के लिए धार्मिक अनुष्ठान करते थे। पशुओं में रोग फ़ैलने पर भी ऐसे उपाय किए जाते थे-

व्याधिभयमौपनिषदकैः प्रतिकारैः प्रतिकुर्युः । औषधैःचिकित्सकाः शान्तिप्रायश्चितैर्वा सिद्धतापसाः। पशुव्याधिमरके स्थानान्यर्थ नीराजनं स्वदैवतपूजनं च कारयेत्।[87]

रोगों के पनपने की सम्भावना को समाप्त करने की दृष्टि से मल-मूत्र-गन्दगी-कूडा-करकट पानी निकासी सम्बन्धी नियम तथा स्वास्थ्यप्रद व हवादार भवन-निर्माण सम्बन्धी नियम बनाये गए थे जिनका पालन कठोरता से कराया जाता था।[88]

---

82 अर्थशास्त्र, १/१६/२०, पृ. सं. ७१ .

83 अर्थशास्त्र, २/५५/३६ पृ. सं. २४९.

84 अर्थशास्त्र, ४/७६/१ पृ. सं. ३५०.

85 अर्थशास्त्र, १०/१५१/३ पृ. सं. ६४९ .

86 अर्थशास्त्र, २/४६/३० पृ. सं. २४६ .

87 अर्थशास्त्र, ४/७८/३ पृ. सं. ३५७ .

88 अर्थशास्त्र, ३/६४/८ पृ. सं. २८६-८८.

जन स्वास्थ्य की रक्षा की दृष्टि से खाद्य-सामग्री जैसे अन्न-तेल-नमक-गंध-औषधि में मिलावट करने वालों को कठोर दण्ड दिया जाता था-

धान्यस्नेहक्षारलवणगन्धभैषज्यद्रव्याणां समवर्णोपधाने द्वादशपणो दण्डः।[89]

३.८.३ पेयजल व्यवस्था

जिन स्थानों पर पानी की कमी होती थी, वहां पर पानी सर्वसुलभ कराने के लिए शासन की ओर से कुएँ, तालाब, प्याऊ आदि का निर्माण कराया जाता था। यह कार्य विवीताध्यक्ष के द्वारा करवाया जाता था-

अनूदके कूपसेतुबन्धोत्सान् स्थापयेत्, पुष्पफलवाटांश्च।[90]

३.८.४ बाग –बगीचों की सथापना

सामाजिक हित में रमणीक फूल तथा फ़लों के उद्यान स्थापित किए जाते थे ।[91]

३.८.५ मनोरंजन सुविधाएं

कौटिल्य का मत है कि मनोरंजन व्यक्ति को ताजगी व उत्साह से भर देता है, किन्तु कौटिल्य ने यह निर्देश दिया है कि नट लोग किसी देश, जाति, गोत्र या चरण के मजाक या निन्दा को छोड़कर तथा मैथुन संबन्धी कर्तव्यों को छोड़कर अपनी इच्छानुसार आम जनता को मनोरंजन की भरपूर सुविधाएँ उपलब्ध कराएं ताकि वे अपनी पूरी क्षमता से कार्य निष्पादन कर सकें-

कुशीलवा वर्षारात्रिमेकस्था वसेयुः।कामं देशजातिगोत्रचरणमैथुनापहाने नर्मयेयुः।[92]

---

[89] अर्थशास्त्र, ४/७७/२ पृ. सं. ३५५ .

[90] अर्थशास्त्र, २/५१-५२/३४ पृ. सं. २४० .

[91] वही .

[92] अर्थशास्त्र, ४/७६/१, पृ. सं. ३५०.

उस समय मनोरंजन तथा आमोद प्रमोद की व्यवस्था में कोई कमी नहीं थी। इसके लिए अभिनेताओं, नर्तकों, वादकों, कहानी कहने वालों, नर्तकियों, रस्सी पर करतब दिखाने वाले, मजदूरों भाण्डों की मण्डलियाँ थी जो कि स्वास्थ्य तथा मितव्ययी प्रेरणास्पद मनोरंजन करते थे और इनके आजीविका का प्रबन्ध नगरों तथा गाँवों से आने वाली आय द्वारा किया जाना चाहिए-

गीतावाद्यपाठ्यनृत्तनाट्याक्षरचित्रवीणावेणु मृदङ्गपरिचितज्ञानगन्धमाल्यसंयूहन सम्पादनसंवाहनवैशिककलाज्ञानानि गणिका दासी रङ्गोपजीविनीश्च ग्राहयतो राजमण्डलादाजीवं कुर्यात्।[93]

परन्तु अपव्यय तथा विलासिता को बढ़ाने वाली मनोरंजक क्रियाओं को प्रतिबन्धित कर दिया जाता था-

परचक्राटवीग्रस्तं व्याधिदुर्भिक्ष पीडितम् । देशं परिहारेद्राजा व्ययक्रीडाश्च वारयेत्॥[94]

समीक्षा-

आधुनिक समय में भारत की आर्थिक नीति वही उद्देश्य है, जो कौटिल्य की आर्थिक नीति का था, जनता का कल्याण तथा सम्पूर्ण देश का विकास । परन्तु समय परिवर्तन के साथ प्रकृति (स्वरूप) बदलती गयी लेकिन उद्देश्य वही रहा है । इस आर्थिक नीति को ठीक ढंग से लागू करने के लिए पंचवर्षीय योजनाएँ योजना आयोग द्वारा लागू की जाती हैं । इन योजनाओं में औद्योगिक नीति, व्यापार नीति, बैंकिंग व्यवस्था तथा समाज से संबन्धित नीतियाँ आदि नीतियों का समावेश किया जाता है । आधुनिक भारत में प्रचलित आर्थिक नीतियों के विषय में संक्षेप में इस प्रकार कहा जा सकता है-

---

93 अर्थशास्त्र, २/४३/२७ पृ. सं. २१०.

94 अर्थशास्त्र, २/१७/१ पृ. सं. ८१ .

औद्योगिक नीति-

भारत की औद्योगिक नीति स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात औद्योगिक अधिनियम १९५१, १९४८ की औद्योगिक नीति को क्रियान्वित करने के लिए पारित किया गया जो मई १९५२ से लागू हुआ।[95] इस नीति में मिश्रित अर्थव्यवस्था स्वीकार की गयी जिसमें औद्योगिक विकास के लिए सार्वजनिक एवं निजी पर बल दिया गया । परन्तु निजी क्षेत्र की अपेक्षा सार्वजनिक क्षेत्र पर अधिक बल दिया गया ।

सार्वजनिक क्षेत्र के साधनों पर शासन का स्वामित्व रहता है तथा आवश्यक प्रबन्धन सार्वजनिक हित का ध्यान रखते हुए सरकार स्वयं करती है । रेल, वायु परिवहन, डाक-तार, टेलीफोन, ऊर्जा, बीमा, बड़े बैंक, महत्त्वपूर्ण खनिज उत्पादन, रक्षा उद्योग, आधार भूत उद्योग आदि सार्वजनिक क्षेत्र में चलाए जा रहे हैं।[96]

निजी क्षेत्र साधन का स्वामित्व निजी लोगों के हाँथ में होता है । इसमें देश की सुरक्षा तथा सामाजिक आर्थिक विकास के लिए सरकार का निजी क्षेत्र पर नियंत्रण होता है तथा बाजार तन्त्र का निगमन किया जाता है । निजी क्षेत्र में कृषि से संबन्धित कार्य, निर्माण कार्य, मुद्रण व प्रकाशन, बागान व डेरी, होटल व रेस्तरां, लघु व कुटीर उद्योग, कागज, चीनी, वस्त्र, सीमेण्ट आदि उपभोक्ता उद्योग तथा कुछ भारी उद्योग चल रहे हैं । उद्योगों में निजी क्षेत्र का महत्त्वपूर्ण स्थान है । देश का लगभग ८०% औद्योगिक आर्थिक क्रिया कलाप इसी क्षेत्र में चल रहे हैं ।[97]

कुछ क्षेत्र ऐसे भी हैं जिनमें सार्वजनिक व निजी दोनों चल रहे हैं जैसे लोहा व इस्पात उद्योग सड़क परिवहन, उर्वरक, कागज आदि। इसे मिश्रित कहा जाता है ।[98]

---

[95] डॉ एस. एन. लाल एवं डॉ एस. के. लाल, *भारतीय अर्थव्यस्था सर्वेक्षण एवं विश्लेषण, खण्ड ५:७।* (५ खण्ड, ७ पृ. सं)

[96] डॉ मधुसूदन त्रिपाठी, *कौटिल्य का आर्थिक चिन्तन,* पृ. सं. ५८.

[97] डॉ मधुसूदन त्रिपाठी, *कौटिल्य का आर्थिक चिन्तन,* पृ. सं. ९४.

[98] वही.

१९४८ के बाद १९५६ की औद्योगिक नीति लागू की गयी। इस नीति में भी सार्वजनिक क्षेत्र पर अधिक बल दिया गया। इसके पश्चात् १९७७ की औद्योगिक नीति लागू की गयी। इसके पश्चात् १९८० के दशक के पश्चात उदारीकरण के संकेत मिलने लगते हैं यानि निजी क्षेत्र की सहभागिता बढ़ने लगी।[99]

परन्तु १९९१ की औद्योगिक नीति नें उदारीकरण, निजीकरण, वैश्वीकरण तथा बाजारीकरण को जन्म दिया जो नयी आर्थक नीति के आधार स्तम्भ कहे गए। इसमें मुख्यतया (१) औद्योगिक लाइसेंसिंग (२) एकाधिकार तथा प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार (MRTP) (3) सार्वजनिक (४) विदेशी निवेश तथा (५) विदेशी प्रौद्योगिकी के संबन्ध में नीतिगत निर्णयों की घोषणा की गयी।[100]

इस तरह औद्योगिक लाइसेंस लेना व सार्वजनिक क्षेत्र सिमटता गया। निजी क्षेत्र का एकाधिकार बढ़ता गया अर्थात् जिसके पास धन होगा वही अर्थव्यव्स्था को चलायेगा तथा विदेशी कम्पनियों को निवेश करने के लिए प्रोत्साहित किया जाने लगा।

आधुनिक व्यापार-

आधुनिक व्यापार काफी प्रगति कर चुका है। कौटिल्य में आध्यात्म प्रधान संस्कृति थी जो आज भौतिकवादी उपभोग प्रधान संस्कृति में बदल चुकी है। कौटिल्य के समय आन्तरिक व विदेशी व्यापार दोनों प्रचलित था, उन्होनें विदेशी व्यापार को आकर्षित करने पर अधिक जोर दिया था क्योंकि व्यापार के साथ-साथ संस्कृति का भी आदान-प्रदान होता है।

वर्तमान समय में सभी देश खुली अर्थव्यस्था पर अधिक जोर दे रहे हैं, क्योंकि एक दूसरे देश के बीच अर्थव्यवस्था के साथ हमारी संस्कृति का आदान-प्रदान हो जिससे आपसी घनिष्ठ संबन्ध स्थापित किया जा सके।[101]

---

99 *भारतीय अर्थव्यस्था सर्वेक्षण एवं विश्लेषण, खण्ड ५:७-८.*

100 वही, खण्ड ५:९.

101 डॉ एस. एन. लाल एवं डॉ एस. के. लाल, *भारतीय अर्थव्यस्था सर्वेक्षण एवं विश्लेषण, खण्ड १:१.*

आचार्य कौटिल्य ने आयात की अपेक्षा निर्यात पर अधिक जोर दिया था क्योंकि दूसरे देश की पूँजी हमारे देश में अधिक आयेगी जिसके फलस्वरूप हमारी अर्थव्यवस्था अन्य देश की अपेक्षा अधिक सम्पन्न तथा सुदृढ़ होगी। आज भी यही सिद्धान्त लागू है । विदेशी व्यापार मूलतः वस्तुओं तथा सेवाओं के निर्यात ताथा आयात से संबन्धित होता है । प्रत्येक देश अपने निर्यात को अधिकतम करना चाहता है तथा आयात को उत्पादन संबन्धी या उपभोग संबन्धी न्यूनतम आवश्यकताओं तक सीमित रखने की कोशिश करता है ।[102]

बैकिंग व्यवस्था-

आज बैंकिंग केवल निजी साहूकारों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक निरन्तर विकसित होती विशाल संगठित व्यवस्था है जिसे राज्य का पूर्ण संरक्षण प्राप्त है ।[103] रिजर्व बैंक भारत का केन्द्रीय बैंक है। इसकी स्थापना रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया एक्ट के तहत १ अप्रैल १९३५ को हुआ ,तभी से यह अपना कार्य करना प्रारम्भ किया। १९४९ में रिजर्व बैंक का राष्ट्रीय करण कर दिया गया और तभी से राज्य स्वामित्व में देश का केन्द्रीय बैंक है। इसके मुख्य कार्य हैं पत्र मुद्रा का निर्गमन, सरकार के बैंक के रूप में कार्य, बैंको के बैंक के रूप में कार्य, मुद्रा साख नियन्त्रण आदि के रूप में कार्य करता है। [104]

यद्यपि बैंको द्वारा जो ऋण उपलब्ध कराया जाता है वह समयावधि के अनुसार अल्पकालीन, मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन में विभक्त किया जा सकता है। अल्पकालीन ऋण एक वर्ष तक की अवधि के, मध्यकालीन ऋण एक से पाँच वर्ष तक की अवधि तक तथा दीर्घकालीन ऋण पाँच से बारह वर्ष तक की अवधि तक होते है।[105] आज विभिन्न बैंकिंग संस्थाएँ हैं जो भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में कार्य कर रही हैं-

---

[102] वही, पृ. सं. खण्ड ९:२.

[103] डॉ मधुसूदन त्रिपाठी, *कौटिल्य का आर्थिक चिन्तन*, पृ. सं. ५१.

[104] डॉ एस. एन. लाल एवं डॉ एस. के. लाल, *भारतीय अर्थव्यस्था सर्वेक्षण एवं विश्लेषण, खण्ड ८:१५-१७.*

[105]कौ*टिल्य का आर्थिक चिन्तन*, पृ. सं. ५१.

१.व्यापारिक बैंक

ये बैंक देश के आन्तरिक एवं विदेशी व्यापार को आर्थिक सहायता प्रदान करते हैं । भारत में इस समय स्टेट बैंक तथा उसके सात सहायक बैंक और १९ राष्ट्रीयकृत बैंक सरकारी क्षेत्र में हैं, शेष निजी क्षेत्र में हैं ।[106]

२.औद्योगिक बैंक-

ये बैंक प्रायः अल्पकालीन ऋण देते है, जबकि उद्योगों के लिये मध्यकालीन एवं दीर्घकालीन ऋणों की आवश्यकता होती है। औद्योगिक वित्त निगम, राज्यों के औद्योगिक वित्त निगम, औद्योगिक साख एवं विनियोग निगम, राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम, औद्योगिक विकास बैंक, औद्योगिक पुनर्निर्माण निगम आदि प्रमुख औद्योगिक बैंकिंग संस्थाएं है।[107]

३. कृषि बैंक-

जिन विभिन्न स्त्रोतों से भारतीय कृषक को ऋण प्राप्त होते है उनको दो वर्गों को रखा जा सकता है[108]-

(क) **गैरसंस्थागत स्त्रोत-** जिसमें हम स्थानीय ग्रामीण साहूकार, जमींदार, देशी बैंकर, कमीशन, एजेन्ट आदि को रखते है।

(ख) **संस्थागत स्त्रोत-** जिसमें सहकारी समितियां, व्यापारिक बैंक, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, भूमि विकास बैंक, नाबार्ड आदि आते है।

बचत बैंक

पाश्चात्य देशों में सामान्य वर्ग की छोटी- छोटी बचतों को प्रोत्साहित करने के लिए बचत बैंकों की स्थापना की गयी है । प्रायः बचत बैंक व्यापारिक बैंकों के सहायक बैंक के रूप में

---

[106] *भारतीय अर्थव्यस्था सर्वेक्षण एवं विश्लेषण, खण्ड ८:२३.*

[107] डॉ मधुसूदन त्रिपाठी, *कौटिल्य का आर्थिक चिन्तन,* पृ. सं. ५२.

[108] डॉ एस. एन. लाल एवं डॉ एस. के. लाल, *भारतीय अर्थव्यस्था सर्वेक्षण एवं विश्लेषण, खण्ड ८:११.*

कार्य करती हैं । हमारे देश में इस प्रकार की सुविधाएँ डाक घरों द्वारा भी दी जाती हैं । व्यापारिक बैंकों द्वारा भी बचत खाते संचालित किए जाते हैं । बचत खातों पर भी व्याज दिया जाता है।[109]

बैंकिंग संस्थाओं पर नियन्त्रण रिजर्व बैंक द्वारा किया जाता है । जिसका मुख्य उद्देश्य सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति हो ।[110]

शिक्षा एवं स्वास्थ्य नीति

शिक्षा तथा स्वास्थ्य दो ऐसी मेरिट वस्तुएँ हैं जो लोगों की अर्जन की क्षमता में वृद्धि करती हैं । स्वन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में 1968 में पहली शिक्षा नीति लागू की गयी । परन्तु विज्ञान व तकनीकी विकास की बढ़ती परिधियों, तीव्र बढ़ती जनसंख्या, बेकारी में वृद्धि तथा बदली परिस्थितियों के अनुरूप शिक्षा प्रणाली में समयानुकूल परिवर्तन की आवश्यकता महसूस की गयी । अतः 1986 में नयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति घोषित की गयी । इसमें महिला शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, अनौपचारिक शिक्षा बढ़ती जनसंख्या को रोजगार मुहैया कराने पर विशेष बल दिया गया । दूरदर्शन, आकाशवाणी तथा इलैक्ट्रानिक श्रव्य-दृश्य उपकरणों के माध्यम से शिक्षा देने के भी प्रयास किए जा रहे हैं ।[111]

आज के समय में सभी को शिक्षा प्राप्त हो, इस इसके लिये सरकार ने शिक्षा से सम्बन्धित कई योजनाएँ चला रही जैसे[112]-

१. सर्वशिक्षा अभियान- २००१ में लागू किया।

२. माडल स्कूल योजना- शिक्षा में उत्कृष्ट मानक स्तर को स्थापित करने के लिए केन्द्र द्वारा २००८ में शुरू की गयी ।

---

109 *कौटिल्य का आर्थिक चिन्तन*, पृ. सं. ५२।

110 *भारतीय अर्थव्यस्था सर्वेक्षण एवं विश्लेषण, खण्ड ८:२३* ।

111 *कौटिल्य का आर्थिक चिन्तन*, पृ. सं. १११

112 *भारतीय अर्थव्यस्था सर्वेक्षण एवं विश्लेषण, खण्ड ३:३५*

३. राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान- माध्यमिक शिक्षा तक पहुँच बढ़ाने तथा इसकी गुणवत्ता में सुधार करने के लिए केन्द्र द्वारा २००९ में शुरू की गयी।

इसके अतिरिक्त बच्चों को निःशुल्क शिक्षा तथा अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए संवैधानिक संशोधन भी किए गए। ८६वाँ संबैधानिक संशोधन २००२ इसी से संबन्धित है। जो बच्चों को निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम २००९, २७ अगस्त को लागू हो गया। इसके तहत अनुच्छेद २१-A तथा ५१A में K जोड़ा गया।जिसमें बच्चों को ६ से १४ वर्ष तक निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान की जाती है।[113]

शिक्षा से संबन्धित नीति, निर्देशात्मक एवं सहयोगात्मक का कार्य मानव संसाधन विकास मंत्राल्य द्वारा किया जाता है, जिसे पहले शिक्षा एवं सस्कृति मंत्रालय कहा जाता था। इस सम्बन्ध में अनेक निकाय गठित की गयी हैं-

१.केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार परिषद्।

२.विश्वविद्यालय अनुदान आयोग।

३.अखिल भारतीय प्राथमिक शिक्षा परिषद्।

४. अखिल भारतीय माध्यमिक शिक्षा परिषद्।

५.अखिल भारतीय प्राविधिक शिक्षा परिषद्।

ये परिषदें क्रमशः सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था, उच्च शिक्षा, प्राथमिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा तथा तकनीकी शिक्षाके व्यवस्थापन की नीति निर्धारण से संबन्धित है।[114]

स्वास्थ्य नीति

आज भारत सरकार द्वारा जनस्वास्थ्य से संबन्धित अनेक नीतियाँ लागू की जा रही हैं। सरकारी क्षेत्र में सरकार नें लखनऊ में एक केन्द्रीय औषधि अनुसंधान विभाग स्थापित किया

---

113 *भारतीय अर्थव्यस्था सर्वेक्षण एवं विश्लेषण, खण्ड ३:३४* तथा एम. लक्षमीकान्त, *भारत की राजव्यवस्था,* खण्ड ७:१२.

114 *कौटिल्य का आर्थिक चिन्तन,* पृ. सं. ११२.

है । आज रोग निवारण के लिए अनेक अधिनियम तैयार किए गए हैं, जिनमें औषधि तथा प्रसाधन सामग्री अधिनियम १९४०, लखनऊ औषधि अधिनियम १९३०, पदार्थों की विक्री अधिनियम, आवश्यक वस्तु अधिनियम १९५५, खाद्य अपमिश्रण अधिनियम १९५४, संवेदनमन्दक अधिनियम १९८५, औषधि मूल्य नियन्त्रण आदेश १९८७ आदि प्रमुख हैं ।इन अधिनियमों में दवाओं में मिलावाट, अधिक मूल्य, असंगत व्यापार नीतियाँ, भ्रामक विज्ञापन से जुड़े अपराधों को रोकने के लिये शारीरिक दण्ड के साथ-साथ आर्थिक दण्ड का भी प्रावधान है।[115]

आज योजनाओं में *सभी के लिए स्वास्थ्य* का लक्ष्य रखा गया है। जिसमें बच्चों को सभी रोगों से बचाव के टीके लगें, ग्रामीण क्षेत्रों में विशेषकर महिलाओं से सम्बद्ध स्वास्थ्य एवं सुरक्षा व्यवस्था सुविधाओं को उन्नत बनाया जाए । विकलांगो के कल्याणार्थ विभिन्न कार्यक्रम का संचालन तथा कुष्ठ, टी.बी., मलेरिया नेत्रहीनता जैसे रोगों के विरुद्ध सघन संघर्ष किया जाए।

पेयजल व्यव्स्था

पानी जीव का मुख्य आधार है । संसार का ४% पानी पृथ्वी पर उपलब्ध है शेष समुद्र में है और खारा है । उसमें भी पृथ्वी पर जितना पानी है उसका .३% पीने योग्य है।[116] अतः बढ़ते वैश्विक तापमान के कारण सभी देशों के सामने यह समस्या खड़ी है कि पानी को कैसे पीने योग्य तथा सुरक्षित बनाया जाय।

पेयजल को सुरक्षित रखने के लिए तथा नदियों के जल को सुरक्षित कर पेयजल की सुविधा उपलब्ध कराने का दायित्व राष्ट्रीय जल विकास एजेंसी को है जिसकी स्थापना १९८० में की गयी और केन्द्रीय जल आयोग सन् १९४५ में से ही जल संसाधन के क्षेत्र में देश एक प्रमुख

---

115 *कौटिल्य का आर्थिक चिन्तन*, पृ. सं. ११३.

116 *कौटिल्य का आर्थिक चिन्तन*, पृ. सं. १२१.

तकनीकि संगठन है । इस संगठन को देश भर में जल संसाधनों का नियंत्रण, संरक्षण और उपयोग की योजनाएँ बनाने और क्रियान्वित करने की जिम्मेदारी सौंपी गयी है।[117]

इस प्रकार भारत सरकार द्वारा लागू की गयी नीतियों एवं योजनाओं के द्वारा लोगों को सुरक्षा, सरंक्षण एवं सुविधा प्रदान किया जा रहा है । जिसके परिणामस्वरूप जो लोग आत्म निर्भर नहीं हैं, उन्हें आत्मनिर्भरता प्रदान कर मुख्य धारा में लाया जा सके ।

इस प्रकार कौटिल्य की आर्थिक नीति का आज की आर्थिक नीति के साथ अध्ययन करने के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि कौटिल्य की आर्थिक नीति आज की अपेक्षा अधिक सुनियोजित एवं सुव्यवस्थित प्रतीत होती है क्योंकि आज की आर्थिक नीतियों के माध्यम से विकास तो हो रहा है परन्तु यह विकास सम्पूर्ण क्षेत्रों में न होकर किसी विशेष क्षेत्र में ही हो रहा है । ऐसा प्रतीत होता है ।

अगला अध्याय अर्थशास्त्रीय आर्थिक नीति का स्त्रियों के सन्दर्भ में विश्लेषण है जिसमें आर्थिक नीति का स्त्रियों को केन्द्र में रखकर विश्लेषण किया गया है, तत्पश्चात् आधुनिक समय के साथ समीक्षा किया गया है ।

---

[117] *कौटिल्य का आर्थिक चिन्तन*, पृ. सं. १२१.

चतुर्थ अध्याय:

अर्थशास्त्रीय आर्थिक नीति का स्त्रियों के सन्दर्भ में विश्लेक्षण

किसी भी समाज व्यवस्था का सबसे बुनियादी तत्व समाज में स्त्रियों के स्थान से सम्बन्धित नियम होते हैं । यह आज का सिद्धान्त नहीं है अपितु प्राचीन काल से प्रचलित सिद्धान्त हैं । कौटिल्य ने स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार देकर अधिक बुद्धिसंगत तथा मानवीय भावनाओं के अनुकूल व्यवस्था की स्थापना की है । कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में स्त्रियों को सुदृढ़ एवं सुलभ आर्थिक सामाजिक संरक्षण प्रदान किया है । अनेक मामलों में तो उन्हें अनेक विशेषाधिकार तथा छूटें भी दी गयी थी । यह कौटिल्य का व्यक्तिगत रूप से स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण था।

स्त्रियों को केन्द्र में रखकर नीति निर्धारण का कार्य कौटिल्य ने अपने ग्रन्थ में विभिन्न स्थानों पर किया है ।

४.१ कर व्यवस्था

कौटिल्य के कर व्यवस्था का सिद्धान्त केवल राजकर्मचारियों या पुरुषों पर ही लागू नहीं होता था बल्कि स्त्रियों पर भी लागू होता था । स्त्रियाँ पुरुष के समान कर अदा करके राज्य के आय कोष को समृद्धता प्रदान करती थीं । तत्कालीन समय में सन्निधाता कोषाध्यक्ष कहलाता था तथा कर वसूलने का कार्य समाहर्त्ता करता था । समाहर्त्ता पाँच-पाँच या दस-दस गावों पर एक केन्द्र बनाता था तथा उसका प्रबन्ध **गोप** नामक अधिकारी करता था । गोप नामक अधिकारी का मुख्य कार्य था कि वह प्रत्येक परिवार के स्त्री-पुरुष, बालक तथा वृद्ध की गणना करना और उनके कार्य, चरित्र, आजीविका एवं व्यय आदि के संबन्ध में पूरी जानकारी रखना होता था-

तत्प्रदिष्टपञ्चग्रामीं दशग्रामीं वा गोपश्चिन्तयेत् । कुलानां च स्त्रीपुरुषाणां बालवृद्धकर्मचरित्रा-जीवव्ययपरिमाणं विद्यात्।[1]

यहाँ पर श्रीमूला टीकाकार ने इस प्रकार से व्याख्या किया है कि स्त्रियों की आजीविका के साधन तथा उनके व्यय का उल्लेख पुरुष, वृद्धि आदि के समान किया जाता था-

कुलानामिति । कुलानां च स्त्रीपुरूषाणां कुटुम्बसम्बन्धिनां च स्त्रीणां पुरूषाणां च, बालादिपरिमाणं एतावद्वयस्काः स्त्रियः पुरूषाश्चेत्येवं वयःपरिच्छेदं कर्माणि वर्णजाति प्रसिद्धानि तत्परिमाणं चरित्रं देशजात्याद्याचारः तत्परिणाम् आजीवो वृत्तिः अर्थात् तन्निमित्त आयस्तपरिमाणं व्ययः कुटुम्बभरणार्थधन विनियोगः तत्परिमाणं च, विद्यात्, गोपः ।[2]

जो इस बात का संकेत मिलता है कि गोप नामक अधिकारी पुरुषों के समान स्त्रियों के आय व्यय का उल्लेख करता था तथा कर वसूल करता था ।

गोप के अतिरिक्त स्थानिक नामक अधिकारी भी होते थे, जो टैक्स वसूलने का भी कार्य करते थे-

गोपस्थानिकस्थानेषु प्रदेष्टारः कार्यकरणं बलिप्रग्रहं च कुर्युः।[3]

समाहर्ता के समान एक नागरिक अधिकारी भी होता था जो नगर के प्रबन्ध के सुरक्षा की चिन्ता करता था । गोप नामक उक्त कार्यों के अतिरिक्त कुलों की स्थापना करना होता था। उत्तम दस कुलों, मध्यम बीस कुलों तथा अधम चालीस कुलों का प्रबन्ध होता था । उन कुलों में स्त्री-पुरुष के वर्ण, गोत्र, नाम, कार्य, उनकी संख्या और उनके आय-व्यय के सम्बन्ध के विषय में जानने का कार्य नागरिक अधिकारी का भी होता था-

समाहर्तृवत् नागरिको नगरं चिन्तयेत् । दशकुलीं गोपो, विंशति कुलीं चत्वारिंशत्कुलीं वा । स तस्यां स्त्रीपुरूषाणां जातिगोत्रनामकर्मिभिः जङ्घाग्रमायव्ययौ च विद्यात् ।[4]

---

1 अर्थशास्त्र, २/५३-५४/३५, पृ. सं., २४२.

2 कौटिलीयार्थशास्त्रम् पञ्चटीकोपेतम्, २/५४/३५, पृ.सं. ४९०.

3 अर्थशास्त्र, २/५३-५४/३५, पृ. सं., २४२.

इसी प्रकरण में आचार्य कौटिल्य कहते हैं कि यदि कोई अध्यक्ष राजकीय धन का गवन करके उसको अदा करनें में असमर्थ हो तो वह धन क्रमशः उसके हिस्सेदार, उसके जामिन, उसके अधिनस्थ कर्मचारी, उसके पुत्र एवं भाई, उसकी स्त्री एवं लड़की अथवा उसके नौकर आदि जमा करें-

सहग्राहिणः प्रतिभुवः कर्मोपजीविनः पुत्रा भ्रातरो भार्या दुहितरो भृत्याश्चास्य कर्मच्छेदं वहेयुः।[5]

अतः यहाँ पर पुरुषों, वृद्धों आदि के समान रजिष्टर में स्त्रियों के नाम, गोत्र, कार्य, चरित्र, आजीविका तथा आय-व्यय के विषय में लिखा जाना एवं किसी अध्यक्ष के द्वारा राजकीय आय गबन होने पर स्त्रियों द्वारा अदा किया जाता था। जो इस बात का संकेत करता है कि स्त्रियाँ को पुरुषों के समान आत्मनिर्भर तथा समान अधिकार प्राप्त था तथा आर्थिक सस्थानों में भी कार्य करती थी।

इसके अतिरिक्त स्त्रियों को कुछ क्षेत्रों से कर मुक्त कर दिया गया था। **नौकाध्यक्ष** का मुख्य कर्तव्य था वह समुद्र तट से के समीपवर्ती नदी को, समुद्र के नौका मार्गों को, झीलों, तालाबों और गाँव के छोटे-छोटे जलीय मार्गों को भलि भाँति देखता था। इसके नजदीक बसे गाँव वालों से तथा व्यापार करने वाले लोगों से टैक्स मिलता था, जिससे राज्य को आय की प्राप्ति होती थी। यह व्यापारियों को व्यापार करने के लिए नौकाओं की व्यवस्था करता था। सभी बन्दरगाहों की देख भाल नौकाध्यक्ष करता था परन्तु बन्दरगाह सम्बन्धी नियम निरधारित करने के लिए एक पत्तनाध्यक्ष होता था।[6]

राज्य के द्वारा कुछ लोगों से कर नहीं लिया जाता था- ब्राह्मण, सन्यासी, बालक, बीमार, राजदूत, हलकारा और गर्भवती स्त्री तथा पासपोर्ट प्राप्त किए हुए व्यक्तियों से भाड़ा नहीं लिया जाता था-

---

[4] अर्थशास्त्र, २/५५/३६, पृ. सं., २४५.

[5] अर्थशास्त्र, २/३३/७, पृ.सं. १०४ .

[6] अर्थशास्त्र, २/४४/२८, पृ. सं., २१२.

ब्राह्मण: प्रव्रजतिबालवृद्धव्याधितशासनहरगर्भिण्यो: नावध्यक्षमुद्राभि: तरेयु:। कृतप्रवेशा: पारविशयिका: सार्थप्रमाणा: विशेषु: ।[7]

इस प्रकार राज्य नदी पार करने या व्यापार करने पर स्त्रियों से टैक्स वसूल नहीं करता था ।

राज्य की ओर से बालक, बूढ़े, रोगी दुःखी और अनाथ व्यक्तियों विशेष सहायता दी जाती थी। अनाथ एवं बन्ध्या स्त्री को विशेष संरक्षण मिलता था-

बालवृद्धव्याधितव्यसन्यनाथांश्च राजा बिभृयात्, स्त्रियमप्रजातां प्रजातायाश्च पुत्रान् ।[8]

४.२ उद्योग

आचार्य कौटिल्य के समय में अनेक उद्योग धन्धे प्रचलित थे । इस समय का प्रधान उद्योग सूत कातने व बूनने का था । यानि **वस्त्र उद्योग** था ।[9] इस महत्त्वपूर्ण उद्योग में केवल स्त्रियाँ ही कार्य करती थी । कौटिल्य कहते हैं कि ऊन, बल्क, कपास, सेंमल, सन और जूट आदि कतवाने के लिए विधवाओं, अङ्गहीन स्त्रियों, कन्याओं, सन्यासिनों, कन्याओं, सजायाफ्ता स्त्रियों, वेश्याओं की खालाओं, बूढ़ी दासियों और मन्दिर की दासियों को नियुक्त करना चाहिए-

ऊर्णावल्ककार्पासतूलशणक्षौमाणि च विधवान्यङ्गाकन्याप्रव्रजितादण्डाप्रतिकारिणीभि रूपाजीवामातृकाभिः वृद्धराजदासभिः व्युपरतोप स्थान देवदासिभिश्च कर्तयेत् । [10]

इसके अतिरिक्त जो स्त्रियाँ परदानसीन हों, जिनके पति परदेश गये हों या फिर विधवा हों, विकलाङ्ग हों, जिनका विवाह न हुआ हो, जो आत्म निर्भर रहना चाहती हों ऐसी स्त्रियों के सम्बन्ध में अध्यक्ष का कर्तव्य होना चाहिए कि दासियों द्वारा सूत भेजकर उनसे कतवाये और उनके साथ अच्छा व्यवहार करे-

---

[7] *अर्थशास्त्र,* २/४४/२८, पृ. सं. २१४.

[8] *अर्थशास्त्र,* २/१७/१, पृ.सं ७९.

[9] एस.के.पाण्डे, *प्राचीन भारत,* पृ. सं., ३०३.

[10] अर्थशास्त्र २/३९/२३, पृ. सं. १९२.

याश्चानिष्कासिन्यः प्रोषितविधवा व्यङ्गाः कन्यका वाऽऽत्मानं बिभृयुस्ताः स्वदासिभिः अनुसार्य सोपग्रहं कर्म कारयितव्याः ।[11]

यह कार्य राज्य के अधीन होता था । अतः सूत कातने वाली स्त्रियों को उनके कार्य के अनुसार वेतन दिया जाता था । उन्हें राज्य की ओर से पुरस्कार भी दिया जाता था, पुरस्कार में उन्हें तेल, आँवला और उबटन दिया जाता था, जिससे वे प्रसन्न होकर अधिक कार्य करें-

श्लक्ष्णस्थूलमध्यतां च सूत्रस्य विदित्वा वेतनं कल्पयेत् । बह्वल्पतां च । सूत्रप्रमाणं ज्ञात्वा तैलामलकोद्वर्तनैरेता अनुगृह्णीयात् ।[12]

इस प्रकार कौटिल्य ने जो प्राचीन काल के महत्त्वपूर्ण उद्योग सूत (वस्त्र उद्योग) उद्योग में महिलाओं को कार्य का अधिकार दिया जिससे वे आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर रह सकें । सबसे अच्छी बात यह थी कि वे इस कार्य में स्वतन्त्र थीं कि वे सूत की कताई पूतलीघर (सूत्रसाला) में जाकर करें या स्वयं घर पर रहकर कार्य करें । इस सम्बन्ध में कौटिल्य ने परीक्षक के ऊपर कुछ कड़े प्रतिबन्ध लागू किये थे कि यदि वह स्त्रियों का मुख देखने या कार्य के आलावा इधर-ऊधर की बात करता है तो प्रथम साहस दण्ड दिया जाता था । उन्हें उचित समय पर वेतन या मजदूरी न देने पर मध्यम साहस दण्ड दिया जाता था तथा कार्य न करने पर भी यदि वेतन देता था तब भी मध्यम साहस दण्ड दिया जाता था-

स्त्रिया मुखसन्दर्शनेऽन्यकार्यसम्भाषायां वा पूर्वः साहसदण्डः । वेतनकालातिपाताने मध्यमः, अकृतकर्मवेतनप्रदाने च।[13]

वस्त्र उद्योग के अतिरिक्त **सुरा (आबकारी) विभाग** में भी स्त्रियाँ काम करती थी । सुरा को बनाने एवं उसका मसाला तैयार करने के लिये स्त्रियों एवं बालकों को नियुक्त किया जाता था-

---

11 अर्थशास्त्र २/३९/२३, पृ. सं. १९३ .

12 अर्थशास्त्र, २/३९/२३, पृ. सं. १९२.

13 वही, पृ.सं. १९३.

सुराकिण्वविचयं स्त्रियो बालाश्च कुर्युः।[14]

श्रीमूला टीकाकार ने व्याख्या करते हुए कहते हैं कि स्त्रियों एवं बालकों को ही सुरा बनाने व उसका मसाला तैयार करने के लिए नियुक्त करना चाहिए-

सुराकिण्वविचयं सुराया विचयं श्रपणादिरूपं कर्म किण्वस्य विचयं शोषणादिरूपं च, स्त्रियो बालाश्च कुर्युः तद्रसानभिज्ञाः।[15]

सुरा के चार भेद हैं- *सहकारसुरा रसोत्तरा बीजोत्तरा वा महासुरा संभारिकी वा ।*[16]

सुरा के प्रकारों का विवेचन द्वितीय अध्याय (२.१२) में किया गया है।

सुरा का प्रबन्ध, सुरा बनाने तथा बेचने के लिए एक निपुण व्यक्ति को नियुक्त किया जाता था, परन्तु यह कार्य सुरा अध्यक्ष के अधीन होता था। सुरा का ठेका बड़े-बड़े व्यापारियों को दे दिया जाता था। ठेकेदार का यह कर्तव्य होता था कि अलग-अलग कमरों में बेहोश उन लोगों के विषय में जो बाहर से आये या नगर के रहने वाले, ऊपर से आर्य लगने वाले, शराबियों के भीतरी भावों का पता लगाने के लिए चतुर व सुन्दर दासियों को ही नियुक्त करे-

वणिजस्तु संवृत्तेषु कक्ष्याविभागेषु स्वदासिभिः पेशलरूपाभिः आगन्तूनां वास्तव्यानां च आर्यरूपाणां मत्तसुप्तानां भावं विद्युः ।[17]

इस प्रकार स्त्रियाँ आबकारी विभाग में काम करके अपने आप को आर्थिक क्षेत्र में आत्मनिर्भर करती थी और वहीं दूसरी तरफ बहर से आये हुए लोगों तथा नगर के लोगों के मन में राज्य के बारे में क्या चल रहा है इसका बखूबी ढंग से पता लगाकर चतुर एवं सुन्दर दासियाँ राज्य के प्रति अपने उत्तरदायित्व का निर्वहण करती थी।

---

14 अर्थशास्त्र, २/४१/२५, पृ. सं. २०४.

15 कौटिलीयार्थशास्त्रम् पञ्चटीकोपेतम्, २/४२/२५, पृ.सं. ४०६.

16 अर्थशास्त्र, २/४१/२५, पृ. सं. २०३.

17 *अर्थशास्त्र,* २/४१/२५, पृ. सं. २०१.

४.३ गणिका

कौटिल्य के समय में **वेश्यालय** को राजकीय मान्यता प्राप्त थी । इसीलिए यह एक पृथक् विभाग था तथा इसका अध्यक्ष होता था जिसे गणिकाध्यक्ष कहा जाता था । वेश्यालय से राज्य को आय की प्राप्ति होती थी । रूप, यौवन से सम्पन्न एवं गायन-वादन में निपुण स्त्री को, चाहे वह वेश्या कुल से सम्पन्न हो या न हों, एक हजार पण देकर राजकीय अधिकारी द्वारा उन्हें गणिका के कार्य के पर नियुक्त करना चाहिए । उस एक सहस्त्र पण में से आधा उन्हें तथा आधा उनके परिवार को दिया जाता था-

गणीकाध्यक्षो गनीकान्वयाम् अगणिकान्वयां वा रूपयौवनशिल्पसम्पन्नां सहस्त्रेण गणिकां कारयेत् । कुटुम्बार्धेन प्रतिगणिकाम्।[18]

वेश्याओं की तीन श्रेणियाँ थीं-

१.कनिष्ठ- जिसका सौन्दर्य व सजावट कम थी तथा वेतन एक हजार पण था । यह छत्र तथा इत्रदान लेकर राजा की सेवा करती थी ।

२. मध्यम- सौन्दर्य एवं सजावट में कनिष्ठ से अच्छी थी तथा वेतन दो हजार पण था । पालकी के साथ रहकर राजा का व्यजन करती था ।

३. उत्तम- यह बात में चतुर उत्तम वेश्या होती थी तथा वेतन तीन हजार पण था । यह राजसिंहासन तथा रथ आदि के निकट रहकर राजा की परिचर्या करती थी–

सौभाग्यालङ्कारवृद्धया सहस्रेण वारं कनिष्ठं मध्यमुत्तमं वारोपयेत् । छत्रभृङ्गारव्यजन शिविका पीठिकारेषु च विशेषार्थम्॥[19]

---

[18] अर्थशास्त्र, २/४३/२७, पृ. सं. २०७.

[19] अर्थशास्त्र, २/४३/२७, पृ. सं. २०७.

गणिकाध्यक्ष के द्वारा के द्वारा वेश्याओं के भोगधन, माता से मिला धन (दाय भाग), सम्भोग से अतिरिक्त आमदनी (आय), और भावी प्रभावी (आयति) आदि को रजिष्टर में दर्ज किया जाता था और उन्हें अधिक खर्च करने से रोका जाता था-

भोगं दायमायं व्ययमायतिं च गणिकाया निबन्धयेत् । अतिव्ययकर्म वारयेत् ।[20]

राज्य की ओर से कन्याओं और वेश्याओं को विशेष अधिकार और संरक्षण प्राप्त था कि यदि कोई पुरुष कामनारहित कुमारी कन्या पर जोर-जबर्दस्ती करता था तो उत्तम साहस दण्ड या फिर इच्छा करने वाली कुमारी के साथ संभोग करने पर प्रथम साहस दण्ड दिया जाता था। कोई भी पुरुष वेश्याओं से भी जोर जबर्दस्ती नहीं कर सकता था। यदि उसकी इच्छा नही हैं और यदि पुररुष घर में बन्द करके मारता-पीटता है तो उसके चोट के अनुसार पुरुष को दण्ड दिया जाता था। यह दण्ड ४८ हजार पण तक ली जा सकती थी-

अकामायाः कुमार्या वा साहसे उत्तमो दण्डः । सहकामायाः पूर्वो साहस दण्डः । गणिकामकामां रून्धतो निष्पातयतो वा व्रणविदारणेन वा रूपमुपध्नतः सहस्त्रदण्डः । स्थानविशेषेण वा दण्डवृद्धिरानिष्क्रयद्विगुणात् पणसहस्त्रं वा दण्डः ।[21]

राज्य वेश्यायों को स्तन्त्रता भी प्रदान कर रखा था। यदि वे राजवृत्ति से मुक्त होना चाहती थी तो चौबीस हजार पण देकर मुक्त हो सकती थी। वेश्या पुत्र राजवृत्ति से मुक्त होना चाहता था बारह हजार पण देकर मुक्त हो सकता था या फिर मूल्य देनें में अस्मर्थ है तो राजा की आठ वर्ष त सेवा करके मुक्त हो सकता था-

निष्क्रयश्चतुर्विंशतिसाहस्त्रो गणिकायाः । द्वादशसाहस्त्रो गणिकापुत्रस्य । अष्टवर्षात्प्रभृतिः राज्ञः कुशीलवकर्म कुर्यात् ।[22]

---

[20] वही. पृ. सं., २०८.

[21] अर्थशास्त्र, २/४३/२७, पृ. सं. २०८-०९.

[22] अर्थशास्त्र, २/४३/२७, पृ. सं. २०८.

राज्य न केवल गणिकाओं कि युवावस्था में सहायता करता था बल्कि वृद्धावस्था में भी सहायता प्रदान करता था । जब गणिकाओं का सौन्दर्य चला जाता था तब उन्हें खाला (मातृका) के स्थान पर नियुक्त कर दिया जाता था । गणिकाओं के लिए दासियाँ भी नियुक्त की जाती थी, क्योकिं कौटिल्य कहते हैं कि यदि गणिका की दासी बूढ़ी हो जाय तो उसे कोष्ठागार या रसोई के कार्य में नियुक्त कर देना चाहिए । यदि वह काम न करना चाहे और किसी पुरुष की स्त्री बनकर रहना चाहे तो, वह प्रतिमास उस गणिका को सवा पण वेतन दे-

सौभामङ्गे मातृका कुर्यात् । गणिकादासी भग्नभोगा कोष्ठागारे महानसे वा कर्म कुर्यात् । अविशन्ती सपादपणम् अवरुद्धा मासवेतनं दद्यात् ।[23]

इस प्रकार ज्ञात होता है कि गणिकाओं को आचार्य कौटिल्य ने स्वतन्त्रता दे रखी थी कि यदि वे चाहे तो राजवृत्ति के लिए वेश्या कार्य कर सकती थी तथा जब चाहे वह राजवृत्ति के कार्य से विमुक्त भी हो सकती थी । परन्तु उनको इस कार्य के लिए राज्य की ओर से वेतन दिया जाता था । यदि जो इस कार्य को नहीं छोड़ती थी तो उन्हें वृद्धावस्था की स्थिति में खाला व कोष्ठागार या रसोई जैसा कार्य दे दिया जाता था । इसके लिए भी उन्हें वेतन दिया जाता था। इस तरह राज्य उनकी हर प्रकार से मदद करता था कि वे आत्मनिर्भर बनी रहें ।

४.४ प्रशासनिक क्षेत्र

तत्कालीन समय में स्त्रियाँ आर्थिक क्षेत्र के अतिरिक्त राज्य के प्रशासनिक पदों पर भी कार्य करती थी । वे अच्छी तरह से राज्य को अपनी सेवा प्रदान करती थीं । वे प्रशासनिक पदों पर कार्य करते हुए राज्य की आर्थिक आय की वृद्धि में अपना योगदान देती थीं । जिसका उल्लेख हमें कौटिल्य अर्थशास्त्र में मिलता है ।

राज्य को सुचारु एवं सुव्यवस्थित रूप से चलाने के लिए राजा, आमात्य, मंत्रिपरिषद्, पुरोहित वर्ग आदि का महत्त्वपूर्ण स्थान था । इनके समान गुप्तचरों और राजदूतों की भी नियुक्ति की जाती थी क्योंकि राजा तक गुप्त समाचारों की सही जानकारी पहुँचाने का

---

[23] अर्थशास्त्र, २/४३/२७, पृ. सं. २०७-०८ .

दायित्त्व इन्हीं पर निर्भर होता था। गुप्तचरों द्वारा प्राप्त जानकारी पर राजा अमात्य, मन्त्रिपरिषद् आदि से विचार-विमर्श करने के बाद किसी अन्तिम निर्णय पर पहुँचता था। यदि सूचना गलत हो, जिसके आधार पर राजा द्वारा उठाया गया कदम राज्य के लिए घातक भी सिद्ध हो सकता है। अतः गुप्तचरों का कर्तव्य होता था कि वह राजा को सही सूचना पहुँचाये। गुप्तचरों को गूढ़पुरुष तथा इसके प्रमुख अधिकारी को सर्पमहामात्य कहा गया है।[24]

आचार्य कौटिल्य ने अपने ग्रन्थ अर्थशास्त्र में कापटिक, उदास्थित, गृहपतिक, वैदेहक, तापस, सत्री, तीक्ष्ण, रसद और भिक्षुकी आदि अनेक प्रकार के गुप्तचर गिनाएं हैं, जिनकी राजा स्वयं नियुक्ति करता था-

उपाधिभिः शुद्धमात्यवर्गो गूढपुरूषानुत्पादयेत्। कापटिक उदास्थिकगृहपतिवैदेहकतापस व्यञ्जनान् सत्रितीक्ष्णरसदभिक्षुकिश्च।[25]

इन्हें दो भागों में वर्णित किया है- **संस्था तथा संचार।** इन गुप्तचर संस्थाओं में स्त्रियों का महत्त्वपूर्ण स्थान होता था।

४.४.१ संस्था

ऐसे गुप्तचर जो संस्थाओं में संगठित होकर कार्य करते थे अर्थात् ये स्थायी होते थे। कौटिल्य के अनुसार संस्था के पाँच प्रकार के थे[26]-

१. **कापटिक-** ये बड़ा प्रगल्भ (दबंग) और विद्यार्थियों के वेश-भूषा में रहते थे।

२. **उदास्थित-** बुद्धिमान्, सदाचारी, सन्यासी, के भेष में रहते थे।

३. **गृहपतिक-** बुद्धिमान्, पवित्र हृदय और गरीब किसान के वेश में रहते थे।

४. **वैदेहक-** ये गरीब व्यापारी के वेश में रहते थे।

---

[24] एस. के. पाण्डे., प्राचीन भारत, पृ. सं. २९५.

[25]अर्थशास्त्र, १/६/१० पृ. सं., २९.

[26] वही. पृ.सं. २९-३१.

५. **तापस-** यह तपस्वियों के वेश में रहते थे ।

४.४.२ संचार

इसमें भ्रमणशील गुप्तचर आते थे, जो चार प्रकार के थे-[27]

१.**सत्री-** यह विशेष प्रशिक्षण प्राप्त गुप्तचर होता था । कौटिल्य के अनुसार इनका कोई सगा सम्बन्धी नहीं होना चाहिए ।

२. **तीक्ष्ण-** ये शूरवीर होते थे जो अपने प्राणों की परवाह न किये विना हाँथी, बाघ और सर्प आदि से भिड़ जाते थे ।

३. **रशद** – ये क्रूर व आलसी प्रवृत्ति के होते थे जो भाई-बन्धु से भी संबन्ध नहीं रखते थे तथा जहर देने वाले होते थे ।

४.**परिव्राजिका-** आजीविका की इच्छुक, दरिद्र, प्रौढ़, विधवा, दबंग ब्राहम्णी, रनिवास में संमानित, प्रधान आमात्यों के घर में प्रवेश पाने वाली परिव्राजिका कहलाती थी । यह सन्यासिनी के वेश में खुफिया एजेंसी का काम करती थी । मुंडा (मुंडित बौद्ध भिक्षुणी) और वृषली (शूद्रा) आदि नारियाँ भी गुप्तचर पद कार्य करती थी । ये सभी संचार नामक गुप्तचर हैं-

परिव्राजिका वृत्तिकामा दरिद्रा विधवा प्रगल्भा ब्राह्मण्यन्तःपुरे कृतसत्कारा महामात्रकुलान्यधिगच्छेत् । एतया मुण्डावृषल्यो व्याख्याताः इति सञ्चाराः ।[28]

इस प्रकार यहाँ परिव्राजिका गुप्तचर में सभी वर्ग की स्त्रियाँ काम करते हुए मिलती थी ।

[27] अर्थशास्त्र, १/७/११ पृ.सं., ३२-३६.

[28] वही. पृ. सं. ३२ .

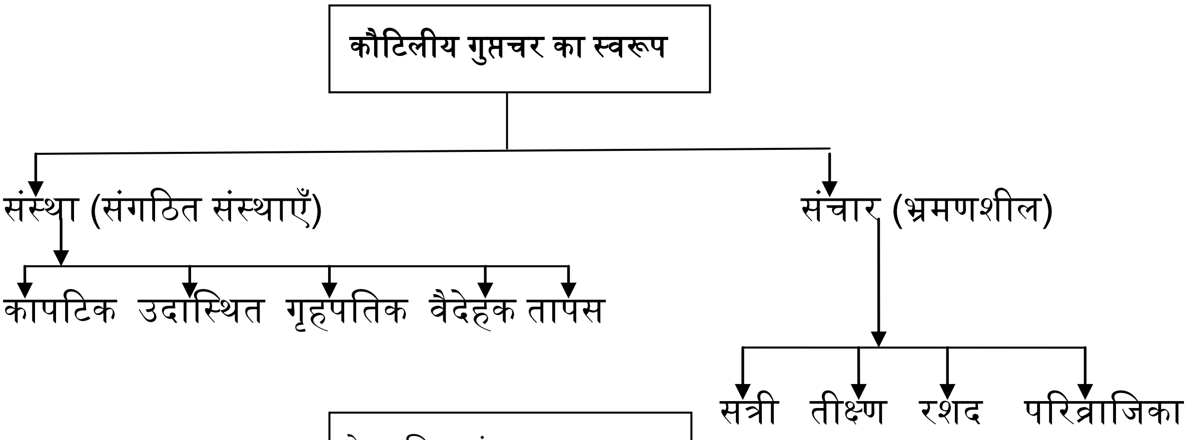

रेखा-चित्र: संख्या: ४.१

राजा इन सत्री आदि गुप्तचरों को मंत्री, पुरोहित, सेनापति, युवराज, अन्तःपुररक्षक, छावनी-रक्षक, कलक्टर, कोषाध्यक्ष, कमिश्नर, हवलदार, नगरमुखिया, खदान निरीक्षक, मन्त्रि-परिषद् का अध्यक्ष, सेनारक्षक, दुर्गरक्षक, सीमारक्षक और आटवीपाल आदि अधिकारियों के समीप, वेश, बोली, कौशल, भाषा तथा कुलीनता के आधार पर उनकी शक्ति और उनके सामर्थ्य की परीक्षा करने के बाद नियुक्त करता था-

तान् राजा स्वविषये मन्त्रिपुरोहितसेनापतियुवराजदौवारिकान्तर्वंशिक प्रशास्तृसमाहर्तृसन्निधातृप्रदेष्टृनायकपौरव्यवहारिककार्मान्तिक मन्त्रिपरिषदध्यक्ष दण्डदुर्गान्तपालाटविकेषु श्रद्धेयदेशवेष शिल्पभाषाभिजनापदेशान् भक्तितः सामर्थ्य योगाच्चापसर्पयेत् ।[29]

तीक्ष्ण गुप्तचर द्वारा प्राप्त सूचनाओं को सत्रि नामक गुप्तचर स्थानिक कापटिक आदि गुप्तचरों को बताता था। इसी प्रकार रसद आदि पुरुष गुप्तचरों द्वारा प्राप्त सूचनाओं को भिक्षुकी वेश धारण करने वाली स्त्रियाँ कापटिक आदि गुप्तचरों को पहुँचाती थी।[30]

उपर्युक्त गुप्तचर के अतिरिक्त **उभयवेतन** भोगी गुप्तचर होते थे। ये गुप्तचर विदेशों में जाकर वहाँ की सरकार के वेतन भोगी नौकर बनते थे और उनके गुप्त रहस्यों की सूचना एकत्रित करते थे। ये गुप्तचर मित्र-पक्ष तथा शत्रु दोनों पक्ष से वेतन लेते थे। इस प्रकार के गुप्तचरों का वर्णन कण्टकशोधन में मिलता है-

---

29 अर्थशास्त्र, १/७/११, पृ. सं. ३३

30 वही.

कण्टकशोधनोक्ताश्चापसर्पाः परेषु कृतवेतना वसेयुः सम्पातनिश्चारार्थं, त उभयवेतनाः ।[31]

इसके अतिरिक्त नट-नर्तक आदि का कार्य करने वाले पुरुषों को धन देकर उनकी स्त्रियों को जो अनेक भाषाएँ बोलना जानती हो तथा अनेक प्रकार का वेश बनाने में निपुण हो, शत्रु के गुप्तचरों का वध करने अथवा उनको विषय वासनाओं में फँसाने के लिए नियुक्त किया जाता था-

संज्ञाभाषान्तराज्ञाश्च स्त्रियस्तेषामनात्मसु ।

चारघातप्रमादार्थं प्रयोज्या बन्धुवाहनाः ॥[32]

यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है कि नट- नर्तक, नाट्य मण्डली आदि में केवल पुरुष ही कार्य नहीं करते थे अपितु स्त्रियाँ भी करती थी ।

इस प्रकार गुप्तचर पद पर पुरुष के समान स्त्रियों को भी नियुक्त किया जाता था । जिसमें सभी प्रकार के वर्ग की स्त्रियों को गुप्तचर के पदों पर नियुक्त किया जाता था । कौटिल्य ने स्त्रियों को इस महत्त्वपूर्ण कार्य का अधिकार देकर पुरुषों के समान लाकर खड़ा कर दिया । ताकि वे अपने जीवन का निर्वहण खुद कर सकें ।

४.५ सैनिक क्षेत्र

कौटिल्य के समय में स्त्रियाँ न केवल आर्थिक क्षेत्र व प्रशसनिक कार्यो में कार्य करती थी बल्कि सैनिक क्षेत्रों में भी कार्य करती थी तथा उन्हें प्रशिक्षण दिया जाता था । क्योंकि कौटिल्य ने एक स्थान पर कहते हैं कि प्रातः काल राजा के विस्तर से उठते ही धनुष-बाण लिये हुए स्त्रियाँ सर्वप्रथम उन्हें घेरती थी । शयन कक्ष के बाद दूसरे कक्ष में प्रवेश करने पर वहाँ कुर्ता, पगड़ी पहने हुए नपुंसक तथा दूसरे सेवक राजा की देख-रेख के लिए उपस्थित होते थे । तीसरे कक्ष में कुबड़े, बौने एवं निम्न जाति के परिजन राजा की रक्षा करते थे । चौथे कक्ष में

---

[31] वही. पृ. सं. ३४ .

[32] अर्थशास्त्र, २/४३/४७, पृ. सं. २११.

मंत्रियों, संबन्धियों और हाँथ में भाला लिए हुए द्वारपालों द्वारा राजा कि रक्षा होती थी- *शयनादुत्थितः स्त्रीगणैर्धन्विभिः परिगृह्येत, द्वितीयस्यां कक्ष्यायां कञ्चुकोष्णीषिभिः वर्षवराभ्यागारिकैः, तृतीयस्यां कुब्जवामनकिरातैः, चतुर्थ्यां मन्त्रिभिः सम्बन्धिभिः दौवारिकैश्च प्रासपानिभिः ।*[33]

इस प्रकार कौटिल्य के समय में स्त्रियों का धनुष-बाण पकड़ना इस बात को इंगित करता है कि उन्हें भी पुरुषों के समान सैनिक प्रशिक्षण दिया जाता रहा होगा ताकि वे अपनी रक्षा खुद कर सकें।

४.६ सामाजिक क्षेत्र

समाज राज्य का दर्पण कहा जाता है अर्थात् समाज की सुख एवं समृद्धि से राज्य की स्थिति का ज्ञान होता है कि राज्य किस प्रकार से विकास कर रहा है और विशेषकर वहाँ स्त्रियों की स्थिति कैसी है, इस निर्भर करता है कि राज्य वास्तव में उन्नत शील है कि नहीं। यदि राज्य पुरुष के समान स्त्रियों को भी समान अधिकार मिले हुए हैं तो उस राज्य को उन्नतशील कहा जाता है। इस बात को ध्यान में रखते हुए आचार्य कौटिल्य नें स्त्रियों के सम्बन्ध में तटस्थ भाव से नियम बनाये हुये थे। कौटिल्य नें अर्थशास्त्र में स्त्रियों को सुदृढ़ एवं सुलभ आर्थिक सामाजिक संरक्षण प्रदान किया है।

पारिवारिक जीवन व्यतीत करते हुए भी स्त्रियाँ अपने परिवार की आर्थिक आय व राज्य की आर्थिक आय में वृद्धि प्रदान करती थी। तत्कालीन समय में स्त्रियों को धन रखने का अधिकार था। विवाह के पहले व विवाह के बाद स्त्री को दिया गया धन या सम्पत्ति स्त्री-धन कहा जाता था। परन्तु यह केवल नामचारे की नहीं बल्कि ठोस रकम होती थी। जिसके सहारे स्त्री संकट काल में अपना भरण-पोषण कर सकती थी। वह अपनी इच्छानुसार धन

---

[33] अर्थशास्त्र, १/१६/२०, पृ. सं., ६९.

का खर्च कर सकती थी परन्तु इसके लिए विशेष नियम बने हुए थे, जिसका पालन करके ही अपना स्त्री धन काम में ला सकती थी।[34]

वृत्ति और आबध्य नाम से दो प्रकार का स्त्री-धन था । वृत्ति धन वह था जो स्त्री के नाम से बैंक आदि में जमा किया जाता था और उसकी रकम कम से कम दो दो हजार पण तक होती थी । गहना या जेवर आदि आवध्य धन कहलाते थे, जिनकी कोई मात्रा निश्चित नहीं थी-

वृत्तिरावध्यं वा स्त्रीधनम् । परद्विसाहस्त्रा स्थाप्याः वृत्तिः । आबन्ध्यानियमः ।[35]

४.६.१ स्त्री की परवरिश

कौटिल्य ने स्त्रियों की दृष्टि से ऐसा नियम बनाया था जिसका पालन करना पुरुषों के लिए अनिवार्य था । जैसे पुरुषों का यह दायित्व होता था कि **स्त्री की परवरिश** करना । यदि किसी स्त्री के भरण–पोषण की अवधि निश्चित नहीं होती थी तो पुरुष उस स्त्री के लिये वस्त्र, भोजन और व्यय का यथोचित प्रबन्ध करता था अथवा अपनी आमदनी के अनुसार उसको अतिरिक्त सुख-सुविधा प्रदान करता था । परन्तु जिस स्त्री के भरण-पोषण का समय निश्चित होता था और जिस स्त्री ने दहेज, स्त्री धन तथा अतिरिक्त धन लेना स्वीकार न किया हो, पति अपनी आमदनी के अनुसार बँधी हुई रकम उसको देना होता था । परन्तु यह नियम उन स्त्रियों पर लागू नहीं होता था जो अपने मायके रहती हों या स्वतन्त्र गुजारा करती हों-

भर्मण्यायामनिर्दिष्टकालायां ग्रासच्छादनं वाधिकं यथापुरुषपरिवापं सविवेशं दद्यात् । निर्दिष्टकालायां तदेव सङ्ख्याय । बन्धं च दद्यात् । शुल्कस्त्रीधनाधि वेदनिकानामनादाने च । श्वसुरकुलप्रविष्टायां विभक्तायां वा नाभियोज्यः पतिः । इति भर्म ।[36]

यदि कोई पुरुष समर्थ होने पर भी अपनी पत्नी, माता-पिता, अविवाहित, तथा विवाहित तथा विधवा बहिन आदि का भरण पोषण न करे तो उसे दण्डित किया जाता था । किन्तु स्त्री

---

34 कौटिल्य कालीन भारत, पृ.सं. १७१.

35 अर्थशस्त्र, ३/५८/२, पृ.सं. , २६२.

36 अर्थशास्त्र, ३/५९/३, पृ. सं. २६६.

व लड़का किसी कारण वश पतित हो जाया तो, उनका भरण-पोषण करने कए लिये बाध्य नहीं था। किन्तु यह नियम पतिता माता पर लागू नहीं होता था, पतिता माता का भरण-पोषण करना व रक्षा करना पुरुष दायित्व होता था-

अपत्यदारान् मातापितरौ भ्रातृप्राप्तव्यहारान्भगिनिः कन्या विधवाः च बिभ्रतः शक्तिमतो द्वादशपणो दण्डोऽन्यत्र पतितेभ्यः अन्यत्र मातुः।[37]

श्रीमूला टीकाकार ने इस प्रकार से व्याख्या किया है-

अपत्येत्यादि । अपत्यदारान् अपत्यं दारांश्च । दारमिति पाठे समाहारद्वन्द्वः । अप्राप्तव्यवहारान् भ्रातॄन् बालान् सोदर्यान् । कन्याः भगिनिः विधवा भगिनिश्च । शक्तिमतिः रक्षणोपायवतः । पतितेभ्योऽन्यत्र पतितव्यतिकरेण, अपत्यादीनाम् अपतितानामेवारक्षणे दण्डो न तु पतितानाम् ।

पतितेष्वपि प्रतिप्रसवमाह- अन्यत्र मातुरिति । माता तु पतितापि रक्षणीयैवेत्यर्थः।[38]

इस तरह कौटिल्य ने माता का स्थान सबसे उपर रखा है। उसकी रक्षा करना प्रत्येक पुरुष का कर्तव्य होता है।

यदि कोई पुरुष अपनी पत्नी तथा परिवार के जीवनयापन का उचित प्रतिबन्ध किए बिना संन्यास ग्रहण करता था तो उसे प्रथम साहस दण्ड दिया जाता था और यदि कोई पुरुष अपनी स्त्री को संन्यासिनी बनने के लिए प्रेरित करता था तो भी यही दण्ड दिया जाता था-
पुत्रदारमप्रतिविधाय प्रव्रजतः पूर्वः साहसदण्डः, स्त्रियं च प्रव्रजायतः । लुप्तव्यवायः प्रव्रजेदापृच्छ्य धर्मस्थान्, अन्यथा नियम्येत्।[39]

इस तरह कौटिल्य ने संन्यास ग्रहण करने पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिया था और परिवार के साथ जीवन व्यतीत करने पर अधिक बल दिया था।

---

[37] अर्थशास्त्र, २/१७/१, पृ. सं. ८० .

[38] कौटिलीयमार्थशास्त्रम् पञ्चटीकोपेतम्, २/१९/१, पृ.सं. १६-१७.

[39] अर्थशास्त्र, २/१७/१, पृ. सं. ८०.

४.६.२ तलाक एवं पुनर्विवाह का अधिकार

यद्यपि समाज ने दूसरे विवाह की स्वीकृति दे रखी थी और जो स्त्री या पुरुष करते थे उन्हें पतित नहीं समझा जाता था फिर भी एक पत्नी और एक पतिव्रत धर्म को आदर्श से देखा जाता था। किन्तु कुछ स्थिति में स्त्री अपने से **तलाक** ले सकती था और **पुनर्विवाह** कर सकती थी। तलाक निम्न स्थितियों में ले सकती थी-

१. यदि पति दुश्चरित्र हो।

२. बहुत दिनों से अनुपस्थित हो।

३. राजकीय वंचना की हो।

४. यदि पत्नी के जीवन के लिए घातक हो।

५. जाति धर्म से बहिष्कृत हो।

६. पुंसत्त्व खो चुका हो।

नीचत्त्वं परदेशं वा प्रस्थितो राजकिल्बिषी। प्राणाभिहन्ता पतितस्त्याज्यः क्लीबोऽपि वा पतिः॥[40]

तथा निम्न स्थितियों में स्त्रियाँ **पुनर्विवाह** कर सकती थी-

१.यदि शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय तथा ब्राह्मणों की पुत्रहीन स्त्रियों के पति यदि विदेश गये हों तो वे एक वर्ष तक, और पुत्रवती स्त्रियों को इससे अधिक समय तक पतियों के आने का इन्तजार करना चाहिए। यदि पति उनके भरण-पोषण व वस्त्र आदि का इन्तजाम करके गये हों तो इससे दुगुने समय तक इन्तजार करना चाहिए। जिनके भोजन वस्त्र का प्रबन्ध न किया हो, उनके बन्धु-बान्धवों को चाहिए कि चार वर्ष तक या आठ वर्ष तक प्रबन्ध करें। इसके बाद पहले विवाह में दिये गये धन को वापस लेकर दूसरा विवाह करने के लिए छूट दे देना चाहिए-

ह्रस्वप्रवासिनां शूद्रवैश्यक्षत्रियब्राह्मणानां भार्याः संवर्सरोत्तरं कालमाकाङ्क्षेरन् अप्रजाताः, संवत्सराधिकं प्रजाताः प्रतिविहिताः द्विगुणं कालम्। अप्रतिविहिताः सुखावस्था विभृयुः, परं चत्वारि वर्षाण्यष्टौ वा ज्ञातयः। ततो यथादत्तमादाय प्रमुञ्चेयुः।[41]

---

[40] अर्थशास्त्र, ३/५८/२, पृ. सं. २६५.

२. कुटुम्ब या समृद्ध बंधु-बान्धवों के द्वारा छोड़ी गयी या विपत्ति की मारी हुई कोई भी प्रोषित पतिका जीवन निर्वाह के लिये, अपनी इच्छा के अनुसार दूसरा विवाह कर सकती थी-

कुटुम्बर्द्धिलोपे वा सुखावस्थैर्विमुक्ता यथेष्टं विन्देत जीवितार्थमापद्गता वा ।[42]

३. यदि जिस स्त्री का पति संन्यास का जीवन व्यतीत कर रहा हो या मर गया हो, उसकी स्त्री सात मासिक धर्म तक दूसरा विवाह न करें । यदि सन्तान हो तो एक वर्ष तक इन्तजार करे । उसके बाद उसको अपने पति के भाई के साथ विवाह कर लेना चाहिए । यदि पति के अनेक भाई हों तो पति के ठीक बाद पैदा हुए जो धार्मिक एवं भरण-पोषण करने में समर्थ भाई की पत्नी न हो तो उसके साथ विवाह कर लेना चाहिए । यदि पति का भाई न हो तो समान गोत्र वाले उसके पारिवरिक भाई के साथ विवाह कर लेना चाहिए । पति के नजदीक से नजदीक का भाई के साथ विवाह कर लेना चाहिए-

दीर्घप्रवासिनः प्रव्रजितस्य प्रेतस्य वा भार्या सप्त तीर्थान्याकाङ्क्षेत्, संवत्सरं प्रजाता । ततः पतिसोदर्यं गच्छेत् । बहुषु प्रत्यासन्नं धार्मिकं भर्मसमर्थं वा । तदभावेऽप्यसोदर्यं सपिण्डं कुल्यं वा । आसन्नमेतेषाम् । एष एव क्रमः।[43]

इस प्रकार उपर्युक्त स्थितियों में स्त्रियों को पतियों को तलाक देने तथा आवश्यकता पड़ने पर पुनर्विवाह करने का भी अधिकार प्रदान किया गया था । किन्तु यदि पति -पत्नी में वैमनस्य की स्थिति में सन्धि-विच्छेद (तलाक) लेना उतना सम्भव नहीं था । केवल पति को पत्नी वैमनस्य होने पर या फिर पत्नी को पति से वैमनस्य होने पर तलाक नहीं लिया जा सकता था । यदि दोनों ही एक समान रूप से द्वेष करते थे तो सम्बन्ध विच्छेद हो सकता था । यदि केवल स्त्री के अपराध के कारण पति अपने पत्नी को छोड़ना चाहता था तो उसकी सम्पत्ति

---

41 अर्थशस्त्र, ३/६०/४, पृ. सं. २७२.

42 वही. २७३.

43 अर्थशास्त्र, ३/६०/४, पृ.सं., २७३-७४.

लौटानी पड़ती थी और यदि पुरुष के किसी दोष के कारण पत्नी पृथक् होती थी स्त्री पति से प्राप्त धन को नहीं लौटाती थी-

अमोक्ष्या भर्तुरकामस्य द्विषती भार्या, भार्यायाश्च भर्ता। परस्परं द्वेषोन्मोक्षः। स्त्रीविप्रकाराद् वा पुरुषश्चेन्मोक्षमिच्छेद्, यथागृहतमस्यै दद्यात्। पुरुषविप्रकाराद् वा स्त्री चेन्मोक्षमिच्छेत्, नास्ये यथागृहीतं दद्यात्।[44]

४.६.३ ऋण व्यवस्था का अधिकार

स्त्रियों को **ऋणव्यवस्था** के सम्बन्ध में राज्य की ओर छूट प्रदान किया गया था। पति के द्वारा लिये गये ऋण को पत्नी से नहीं वसूला जा सकता था। ऋण प्राप्ति के लिए उन पर कोई दबाव या उनसे जोर जबर्दस्ती नहीं किया जा सकता था। पत्नी पती के ऋण के लिये उत्तरदायी नहीं थी। परन्तु कौटिल्य नें ग्वाला आदि कार्यों की कमाई पर निर्भर रहने वाली स्त्रियाँ अपने पति की अनुपस्थिति में अपने पति का कर्जा चुकता करने के लिए जिम्मेदार थीं। पत्नी द्वारा लिए ऋण के लिए पति उत्तरदायी होता था-

अग्राह्याः कर्मकालेषु कर्षका राजपुरूषाश्च। स्त्रीवाऽप्रतिश्राविणी पतिकृतम् ऋणमन्यत्र गोपालकार्धसीतिकेभ्यः। पतिस्तु ग्राह्यः स्त्री कृतम् ऋणमप्रतिविधायप्रोषित इति।[45]

इस प्रकार कौटिल्य ने जहाँ एक ओर स्त्रियों को ऋण को देने से मुक्त रखा है परन्तु वहीं दूसरी ओर ग्वाला अदि का कार्य करने वाली स्त्रियों को ऋण देने के लिए जिम्मेदार ठहराकर सम्भवतः उचित नहीं किया था। श्रीमूला टीकाकार ग्वाला आदि स्त्रियों के द्वारा ऋण को अपवाद कहा है तथा इसकी वयाख्या इस प्रकार से किया है-

धनिकैरभियुक्तानाम् ऋणिनां ग्रहणे विशेषमाह आग्रह्य इति। कर्षकाः राजपुरूषाश्च, कर्मकालेषु स्वस्वकर्मानुष्ठानकालेषु, आग्रह्याः। स्त्री वेति। स्त्री च, अग्राह्या, कीदृशी, पतिकृतम् ऋणम् अप्रतिश्राविणी अहं दास्यामीत्येनङ्गीकारिणी। अङ्गीकारिणी तु ग्राह्यैव।

---

[44] अर्थशास्त्र, ३/५९/३, पृ.सं., २६७-६८.

[45] अर्थशास्त्र, ३/६७/११, पृ.सं. ३०१.

तत्रापवादः- अन्यत्र गोपालकार्धसीतिकेभ्य इति । गोपालकाः प्रसिद्धाः अर्धसीतिकाः कृषिकर्मसिद्धसीताफलार्धभागिनः तेषां स्त्रीप्रधानानां स्त्रियं विना । सा तु अप्रतिश्रावीण्यपि ग्राह्यैवैत्यर्थः ।

पतिस्त्विति । पतिः पुनः अप्रतिश्राव्यपि ग्राह्या एव, स्त्रीकृतमृणमप्रतिविधाय प्रोषित इति कृत्वां ।[46]

४.६.४ सम्पत्ति का अधिकार

सम्पत्ति के बटवारे में अचार्य कौटिल्य नें यह् निर्देश दिया है कि जब सम्पत्ति का बटवारा हो तो उस समय यदि परिवार में कोई अविवाहित कन्या है तो विवाह् आदि के लिये जितने धन की अपेक्षा हो उतना धन पैतृक सम्पत्ति से लेने का अधिकार था-

द्रव्यमपुत्रस्य सोदर्या भ्रातरः सहजीविनो वा हरेयुः कन्याश्च ।[47]

अन्य दशाओं में बड़े भाइयों का यह् कर्तव्य होता था कि अपने छोटे भाइयों के समान अपनी छोटी बहनों के विवाह् में दहेज आदि के लिये यथोचित धन दे-

सन्निविष्टसममसन्निविष्टेभ्यो नैवेशनिकं दद्युः । कन्याभ्यश्च प्रादानिकं ।[48]

कौटिल्य ने पैतृक सम्पत्ति में भाग न पाने वाली बहनों को माता की सम्पत्ति में से बर्तन, जेवर आदि लेने का अधिकार प्रदान किया था-

अदायादा भगिन्यः मातुः परिवापाद्भुक्तकांस्याभरण भागिन्यः ।[49]

तत्कालीन समय में पितृ सत्तात्मक प्रचलित होने के बावजूद आचार्य कौटिल्य ने सम्पत्ति बटवारे में स्त्रियों को सम्पत्ति से बेदखल नहीं किया, बल्कि उन्हें सम्पत्ति प्राप्त करने का

---

[46] कौटिलीयमार्थशास्त्रम् पञ्चटीकोपेतम्, ३/६३/११ पृ.स. ५८७.

[47] अर्थशास्त्र, ३/६१/५, पृ. सं. २७५.

[48] वही., पृ. सं. २७७.

[49] अर्थशास्त्र, ३/६२/६, पृ. सं. २७९ .

अधिकार दिया था। पितृसत्तात्मक में सुवर्ण, आभूषण एवं नकदी आदि रिक्थ धन में उसके अधिकारी लड़के हैं, लड़कों के अभाव में लड़कियाँ रिक्थ धन की अधिकारिणी हैं, जो धर्म विवाहों से पैदा हुई हैं। लड़कियों के अभाव में मृतक पुरुष का जीवित पिता, पिता के अभाव में पिता के सगे भाई और उनके अभाव में भी उनके पुत्र उस सम्पत्ति के हकदार हैं-

रिक्थं पुत्रवतः पुत्रा दुहितारो व धर्मिष्ठेषु विवाहेषु जाताः। तदभावे पिताधरमाणः, पित्रभावे भ्रातरो भ्रातृपुत्राश्च।[50]

४.६.५ दण्ड विधान का अधिकार

आचार्य कौटिल्य ने **दण्ड** देने का भी विधान किया है। यह दण्ड अपराधी को उसके दण्ड के अपराध के अनुसार दिया जाता था। परन्तु इस क्षेत्र में भी कौटिल्य ने स्त्रियों को विशेष छूट प्रदान कर रखा था।

जिसका अपराध साबित होता था उसी को दण्ड देने का प्रावधान था, किन्तु गर्भिणी और एक महीने से कम प्रसूता को हर्गिज दण्ड नहीं दिया जाता था। अपराध करने पर पुरुषों के लिये जो दण्ड थे, महिलाओं को उसका आधा दण्ड ही दिया जाता था अथवा मौखिक रूप से दण्ड दिया जाता था-

आप्तदोषं कर्म कारयेत्। न त्वेव स्त्रियं गर्भिणीं सूतिकां वा मासावरप्रजाताम्। स्त्रियास्त्वर्धकर्म। वाक्यानुयोगे वा।[51]

कौटिल्य ने राजकर्मचारियों पर दण्ड व्यवस्था द्वारा नियन्त्रण कर रखा था। सरकारी भवन तथा स्वर्णकार्यशाला आदि में कार्य करने वाली स्त्रियों को राज्य की ओर से विशेष संरक्षण प्रदान किया गया था। यदि कोई राजकीय कर्मचारी खरीदी हुई या गिरवी रखी हुई दासी के साथ व्यभिचार करता है तो प्रथम साहस दण्ड दिया जाता था। चोर या विनष्ट अकस्मात्

---

[50]अर्थशास्त्र, ३/६१/५, पृ. सं. २७६.

[51] अर्थशास्त्र, ४/८३/८, पृ. सं. ३७७.

पुरुष (डामरिक) की पत्नी के साथ करने पर मध्यम साहस दण्ड और कैद में बन्द किसी आर्या पत्नी के साथ करने पर उत्तम साहस दण्ड दिया जाता था और यदि ऐसा कोई कैदी ही करे तो उसे प्राण दण्ड दिया जाता था। सुवर्णाध्यक्ष यदि किसी कुलीन स्त्री के साथ करे तो उसे भी प्राण दण्ड दिया जाता था। दासी के साथ करने पर प्रथम साहस दण्ड लगाया जाता था- *परिगृहीतां दासीमाहितिकां वा संरूद्धिकाम् अधिचरतः पूर्वः साहस दण्डः । चोरडाम् अरिकभार्यां मध्यमः । संरूद्धिकामार्यामुत्तमः । संरूद्धस्य वा तत्रैव घातः । तदेव अध्यक्षेण गृहीतायार्यायां विद्यात् । दास्यां पूर्वः साहसदण्डः ।*[52]

कुवाँरी कन्या के साथ जोर जबर्दस्ती या बलत्कार करने पर व्यक्ति को धन दण्ड से लेकर प्राण दण्ड तक दिया जाता था । जो कोई व्यक्ति अपनी जाति की रजोधर्म रहित (अरजस्वला) कन्या को दूषित करता था तो उसका हाथ कटवा लिया जाता था अथावा उस पर चार सौ पण दण्ड ल्गाया जाता था । यदि वह बलत्कार के कारण मर जाती थी तो अपराधी को प्राणदण्ड दिया जाता था-

सवर्णाम् अप्राप्तफलां कन्यां प्रकुर्वतो हस्तवधश्चतुःशतो द्विशतो वा दण्डः । मृतायां वधः ।[53]
जिसकी लड़की सगाई हो चुकी होती थी उसके साथ संभोग करने वाले का हाँथ काट लिया जाता था या चार सौ पण दण्ड लिया जाता था और सगाई का सारा खर्च उससे वसूल किया जाता था-

परशुल्कावरूद्धायां हस्तवधश्चतुःशतो वा दण्डः शुल्कदानं च ।[54]

इस प्रकार आचार्य कौटिल्य ने स्त्रियों एवं कन्यायों के साथ दुर्वयवाहार करने वाले व्यक्ति व राजकीय कर्मचारियों पर कठोर दण्ड व्यवस्था का विधान किया था ताकि स्त्रियाँ व कन्यायें स्वतन्त्रता पूर्वक सामाजिक जीवन व्यतीत कर सकें ।

---

52 अर्थशास्त्र, ४/८४/९, पृ. सं. ३८४ .

53 अर्थशास्त्र, ४/८७/१२, पृ. सं. ३९३.

54 वही.

इसके अतिरिक्त आचार्य कौटिल्य ने स्त्रियों को स्वतन्त्रता का अधिकार प्रदान किया था, परन्तु सामाजिक नियमों का उलघंन करने वाली स्त्रियों, यानि कठोर कार्य करने वाली स्त्रियों के लिए भी दण्ड-नियम बनाया था, ताकि दाम्पत्य जीवन सुखी पूर्वक व्यतीत किया जा सके और सामाजिक प्रतिष्ठा में कोई कमी न आये।

४.६.६ कठोर स्त्री के साथ व्यवहार

यदि कोई स्त्री दाम्पत्य नियमों का उलघंन करती है तो, उसको पहले नंगी, अधनंगी, लूली-लगड़ी आदि गालियाँ न देकर उसको भले ढंग से नम्रता तथा सभ्यता सिखाना चाहिए। यदि इससे कार्य न सधे तो उसकी पीठ पर बाँस की खपाची, रस्सी या डप्पण से तीन बार चोट करे। फिर भी वह सीधी राह पर न आवे तो उसे वाक्पारुष्य तथा दण्डपारुष्य का आधा दण्ड दिया जाय-

नग्ने, विनग्ने, न्यङ्गे, अपितृके, अमातृके, इत्यनिर्देशेन विनयग्राहणम् । वेणुदलरज्जु हस्तानामन्यतमेन वा पृष्ठे त्रिराघतः। तस्यातिक्रमे वाग्दण्डपारूष्य दण्डाभ्यामर्धदण्डाः।[55]

उपर्युक्त दण्ड उस स्त्री को भी दिया जाय जो विना कारण ही निर्दोष पति से बुरा व्यहार करती हो और पति के दरवाजे पर या बाहर किसी प्रकार की इशारेबाजी या ऐयाशी करे। इस प्रकार के नियम-विरुद्ध आचरण करने वाली स्त्री के लिए दण्ड का विधान किया गया है। यह कटुभाषिणी स्त्री के व्यवहार पर लागू होता है-

तदेव स्त्रिया भर्तरि प्रसिद्धम् अदोषाया ईर्ष्याया बाह्यविहारेषु द्वारेषु अत्ययो यथानिर्दिष्टः। इति पारुष्यम्।[56]

इस प्रकार स्पष्ट है कि आचार्य कौटिल्य ने कुलीन, धर्मपरायण, चरित्रवान, नियमपूर्वक जीवन निर्वाह करने वाली महिलाओं एवं कन्याओं को पूर्ण आर्थिक सामाजिक संरक्षण देते हैं, परन्तु आवारा, चरित्रहीन, स्वेच्छाचारी स्त्रियों पर कठोर प्रतिबन्ध सुनिश्चित किया है।[57]

---

[55] अर्थशास्त्र, ३/५९/३, पृ. सं. २६६.

[56] वही, पृ. सं., २६७ .

समीक्षा-

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत सरकार के द्वारा स्त्रियों के विकास पर ध्यान दिया जा रहा है। महिला एवं बाल विकास मंत्रालय द्वारा महिला के विकास एवं कल्याण के लिये सरकार नें कई योजनाएँ शुरू की है तथा कई नीतिगत पहलें की है। जिसमें महिलाओं के आर्थिक एवं सामाजिक सशक्तीरण तथा सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन के कई पहलुओं में लिंग बराबरी हासिल करने के लिए कदम भी शमिल है। उल्लेखनीय है कि महिला सशक्तीकरण की राष्ट्रीय नीति २००१ में शुरू की गयी।[58] विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत महिलाओं की स्कीमों का दायरा एवं कवरेज बढ़ता जा रहा है।

महिलाओं के सशक्तीकरण से सम्बन्धित मुख्य नीतियाँ निम्नानुसार है-

१.एकीकृत बाल एवं विकास तथा सेवा स्कीम-

१९७५ में शुरू यह स्कीम का उद्देश्य ६ वर्ष तक के उम्र के बच्चों, गर्भवती महिलाओं और स्तन पान कराने वाली महिलाओं को स्वास्थ्य पोषण एवं शैक्षणिक सेवाओं का एकी कृत पैकेज प्रदान करना है तथा आँगनवाड़ी, भवनों, सीडीपीओ कार्यालयों के निर्माण के लिए आर्थिक संसाधन प्रदान करना है। इसके अन्तर्गत ११-१८ वर्ष के किशोर आयु वर्ग की बालिकाओं के सेवाओं, गैर सरकारी संगठनों की प्रभावशाली भागीदारी और निगरानी कार्य को सुदृढ़ बनाया गया है।[59]

२.**स्वयं सिद्धा-स्वसहायता समूह**

इसका मुख्य उद्देश्य सेवा प्रदान करने, सूक्ष्म वित्तियन की उपलब्धता तथा सूक्ष्म उद्यमों को प्रोत्साहित करना है।[60]

---

[57] अर्थशास्त्र, ४/८७/१२, पृ. सं. ३९३-९७ .

[58] प्रो.एस. एन. लाल व डॉ एस. के. लाल, *भारतीय अर्थव्यव्स्था सर्वेक्षण एवं विश्लेक्षण,* खण्ड,३:३८ .

[59] वही. खण्ड, ३:३९ .

[60] वही. खण्ड, ३:३८.

३. स्वाधार

यह स्कीम केन्द्र द्वारा २००१-०२ में शुरू की गयी है, जो महिलाओं को कठोर परिस्थितियों में जैसे परिवार से त्यक्त विधवाओं, जेल से छूटी ऐसी महिलाओं जिनको कोई ठिकाना नहीं है। प्राकृतिक विपदाओं से बेघर तथा विना किसी की सहायता प्राप्त महिलाओं या वेश्यावृत्ति से भागी हुई या निकाली गयी महिलाओं आदि को सहायता पहुँचाती है।[61]

४.राष्ट्रीय महिला कोष

राष्ट्रीय महिला कोष या जिसे नेशनल क्रेडिट फण्ड फार वीमेन के नाम से भी जाना जाता है। यह ३० मार्च १९९३ को शुरू किया गया, जिसका प्रमुख उद्देश्य गरीब महिलाओं को आय अर्जित क्रियाओं जैसे- डेयरी, कृषि, दुकानदारी आदि के लिये सूक्ष्म वित्तियन की व्यवस्था करना है।[62]

५. इन्दिरा महिला योजना

इसका उद्देश्य महिलाओं की अधिकारिता प्रदान करना है। यह योजना १९९५-९६ में २०० खण्डों में शुरू की गयी थी। बाद में इसमें महिला समृद्धि योजना को जोड़ दिया गया।[63]

६.महिला किसान सशक्ती करण योजना

यह अप्रैल २०१० से शुरू परियोजना है। जो किसान महिलाओं की विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति से सम्बन्धित है। यह योजना राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन के एक उप भाग के रूप में १०० करोड़ रूपया से शुरू की गयी थी।[64]

७.कार्यकारी महिलाओं के लिए होस्टल- यह स्कीम १९७२ से चल रही है।[65]

---

[61] वही. खण्ड, ३:३९.

[62] *भारतीय अर्थव्यवस्था सर्वेक्षण एवं विश्लेक्षण, खण्ड, ३:३९.*

[63] वही. खण्ड, ३:३९.

[64] वही., खण्ड, ३:४० .

[65] वही., खण्ड, ३:३८ .

इसके अतिरिक्त सशक्ति प्रोजेक्ट (१९९८), स्वावलम्बन एवं उज्ज्वला (२००४) इत्यादि योजना महिला सशक्ती करण से सम्बन्धित चलाई जा रही हैं। कुछ योजनाएं बालिकाओं से सम्बन्धित चलाई जा रही हैं

जो निम्नाकिंत हैं-

- **बालिका समृद्धि योजना**

यह १९९७ में बालिकाओं के प्रति समाज के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने के उद्देश्य से प्रारम्भ किया गया था, जून १९९९ में पुनः गठित किया गया है। इसके अन्तर्गत आंगनवाड़ी, केन्द्र किशोरी शक्ति योजना तथा किशोरी पोषाहार कार्य (एन. पी.ए.जी.) क्रियान्वित होते हैं।[66]

- **किशोरी शक्ति योजना**

११ से १८ वर्ष की किशोरियों के लिए एक विशेष योजना है, जिसके अन्तर्गत आई.सी.डी.सी.एस. अवसंचरना का उपयोग करते हुए पोषाहार, साक्षरता तथा व्यावसायिक दक्षता के साथ किशोरिय़ों का विकास किया जाता है। इस योजना को देश के सभी ब्लाकों में फैलाने का प्रयास किया जा रहा है।[67]

- **किशोरियों के लिए पोषाहार कार्यक्रम**

इसके अन्तर्गत पोषाहार से वंचित किशोरियों को (११-१९वर्ष) उनकी वित्तीय स्थिति को ध्यान दिए बिना प्रतिमाह प्रतिलाभ भोगी ६ किलोग्राम खाद्यान्न निःशुल्क मुहैया कराया जाता है।[68]

---

[66] वही., खण्ड, ३:३९

[67] *भारतीय अर्थव्यवस्था सर्वेक्षण एवं विश्लेक्षण, खण्ड , ३:३९ .*

[68] *भारतीय अर्थव्यवस्था सर्वेक्षण एवं विश्लेक्षण, खण्ड , ३:३९ .*

- **सबला या किशोरियों की अधिकारिता के लिए राजीव गांधी स्कीम**

इस नयी स्कीम को ११ नवम्बर २०१० को देश के २०० जिलों में शुरु किया गया। इसके अन्तर्गत किशोरियों के स्वास्थ्य के लिए उन्हें प्रत्येक दिन पोषण युक्त राशन दिया जायेगा।[69]

- **धनलक्ष्मी**

बालिकाओं के लिए मार्च २००८ में शुरू की गयी एक सशर्त नकदी अन्तरण स्कीम है । इसके अन्तर्गत बालिकाओं के जन्म पंजीकरण, प्रतिरोधी टीकाकरण तथा विद्यालय में ८ तक पढ़ाई करने से सम्बन्धित कुछ शर्तों को पूरा करने पर निश्चित नकद राशि उसके परिवार को देय होती है ।[70]

- **कस्तूरबा गाँधी विद्यालयों की योजना-**

२० जुलाई २००४ को बालिकाओं का शैक्षिक पिछड़ापन दूर करने के लिए सरकार ने देश भर में SC, ST, OBC तथा मुस्लिम समुदाय की लड़कियों के लिए आवासीय अपर प्राइमरी स्कूल की सुविधा उत्पन्न कराने के लिए कस्तूरबा गाँधी विद्यालय खोलनें की घोषणा की गयी ।[71]

राष्ट्रीय महिला आयोग एवं इनके कार्य

---

[69] वही.

[70] वही., खण्ड, ३:४० .

[71] वही. *खण्ड, ३:३९ .*

महिलाओं के हितों को संरक्षण प्रदान करने के लिए राष्ट्रीय आयोग के तहत जनवरी १९९२ में एक संवैधानिक निकाय के रूप में **राष्ट्रीय महिला आयोग** का गठन किया गया । यह अधिनियम संख्या २० के तहत पार्लियामेन्ट द्वारा १९९० में पारित की गयी थी ।[72]

इसका उद्देश्य कानून की पुनरीक्षा, कार्यस्थल पर महिलाओं के प्रति अत्याचारों एवं सामाजिक उत्पीड़न की विशेष व्यक्तिगत शिकायतों में हस्तक्षेप एवं इसकी सहायता सुधारात्मक कार्यवाही करना तथा सुझाव देकर महिलाओं के अधिकारों एवं हितों की रक्षा करना है ।[73]

महिला आयोग बाल विवाह के मुद्दे भी देखती है तथा यह महिला लोक अदालतें भी चलाती हैं । महिला आयोग में निम्न लिखित मुद्दों पर शिकायतें की जा सकती है-

घरेलू हिंसा, उत्पीड़न, दहेज के लिए प्रताड़ित किए जाने पर, पति द्वारा छोड़े जाने पर, यदि पति द्वितीय विवाह किया हो, बलत्कार, पुलिस द्वारा प्राथमिकी इनकार करने पर, ऑफिस में सहयोगी या बॉस द्वारा लिंग भेद, यौन उत्पीड़न या क्रूरता दिखाने पर ।[74] इसके अतिरिक्त राज्य सरकारें भी अपने-अपने राज्यों में ऐसी योजनाएँ चला रही हैं तथा महिलाओं को हर प्रकार से सरंक्षण प्रदान करने के लिए महिला राष्ट्रीय आयोग काम कर रही है ।

इस प्रकार कौटिल्य के समान भारतीय सरकार द्वारा आज भी स्त्रियों तथा बलिकाओं के सशक्तिरण से सम्बन्धित अनेक योजनाएँ तो चलाई जा रही हैं । परन्तु ये योजनाएं दिखावा मात्र प्रतीत होती हैं क्योंकि महिलाओं पर अब भी आये दिन अत्याचार होते रहते हैं । इस अत्याचार को कम करने के लिए सरकार को कौटिल्य के समान नीतियों या योजनाओं का कठोरता एवं अनुशासनात्मक रुप से पालन करना चाहिए ।

---

[72] राष्ट्रीय महिला आयोग और इनके कार्य: वीकिपिडिया

[73] *भारतीय अर्थव्यव्स्था सर्वेक्षण एवं विश्लेषण, खण्ड , ३:३९ .*

[74] राष्ट्रीय महिला आयोग और इनके कार्य: वीकिपिडिया

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

प्राथमिक स्रोत

प्रत्यक्ष

- *कौटिलीय अर्थशास्त्र, (पञ्चटीका सहित),* संपादक-आचार्यविश्वनाथशस्त्रिदातार, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी, १९९१.
- *कौटिलीयम् अर्थशास्त्र (श्रीमूलाटीकासहित)*, संपादक टी.गणपति शास्त्री, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थानम्, नई दिल्ली, २००६.
- *कौटिलीय अर्थशास्त्र,* अनु. देवदत्त शास्त्री, इलाहाबाद, १९५७.
- *कौटिलीय अर्थशास्त्र*, व्याख्याकार- वाचस्पति गैरोला, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, २००६.
- *कौटल्य कालीन भारत*, आचार्य दीपंकर, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, २००३.
- *कौटिल्य के प्रशासनिक विचार,* देवकान्ता शर्मा, प्रिन्टवैल पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स जयपुर, प्रथम संस्करण १९९८.
- *विष्णु पुराण*, अनुवादक- मुनिलाल गुप्त, गीताप्रेस गोरखपुर, २००३.
- *चाणक्य सूत्र संग्रह,* रामावतार विद्याभास्कर, आर.बी.एस. हरिद्वार, १९७६.
- *प्रतिपादचन्द्रिका*, भट्टस्वामी, पटना, दि जनरल ऑफ विहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, १९२५-२६.
- *नयचन्द्रिका*, माधवराज याजव, लाहौर, १९२४.
- *भारतीय अर्थव्यवस्था- सर्वेक्षण तथा विश्लेषण*, एस. एन. लाल व एस. के. लाल, शिवम् पब्लिशर्स इलाहाबाद, २०११.

- *प्राचीन भारत,* एस. के. पाण्डे, प्रयाग एकेडमी पब्लिकेशन एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, इलाहाबाद २०११.
- *Kautilya's Plitical Ideas and Institutions*, Radhakrshan Chaudhary, Chaukhmbha Sanskrit Series Office, Varanasi (India), 1971.
- *Kautilya Arthasastra*, (Tr.) R. Shamshastry, Chaukhambha Sanskrit Sansthan, Delhi, 2005.
- *Kautilya Arthasastra*, (Tr.) R. Shamshastry, Mysore Printing and Publishinng House, Mysore, 1960.
- *The Kautilya Arthasastra (in three volumes)*, R. P. Kangle, M.L.B.D., Delhi, 2008.
- *Kautilya Arthsastra*, ed. (Hindi), Ramateja Sastri Pandeya Banaras, 1959.
- *Economics in Kautilya*, Benoy Chandra Sen, Sanskrit College, Calcutta, 1967.

अप्रत्यक्ष-

- *प्राचीनराजशास्त्रार्थशास्त्रयोर्वैज्ञानिकमध्ययनम्*, सत्यनारायणमिश्र, चौखम्भा ओरियन्टलिया, वाराणसी, १९८०.

- *शुक्रनीति (टीकासहित),* जगदीशचन्द्र मिश्र, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी २००५.
- *नीतिवाक्यामृत- (हरिबलिया टीकासहित)*, पन्नालाल सोनी, बम्बई, १९२२.
- *वार्हस्पत्य राज-व्यवस्था*, राघवेन्द्र वाजपेयी, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी-१, १९६६.
- *कौटिल्य अर्थशास्त्र एवं कामन्दकीय नीतिसार का तुलनात्मक अध्ययन*, फुलेश्वर झा, कला प्रकाशन, २००६.
- *वीरमित्रोदय- राजनीति प्रकाश*- मित्रमिश्र, चौखम्भा प्रकाशन, बनारस, १९१६.
- *वीरमित्रोदय- लक्षण प्रकाश*- मित्रमिश्र, चौखम्भा प्रकाशन, बनारस, १९१४.
- *सरस्वतीविलास*- प्रतापरुद्र, आर. श्याम शास्त्री मैसूर, १९२७.डॉ. महवीर, समानान्तर प्रकाशन, ७/७ दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण २००१.
- *वैदिक अर्थव्यवस्था,* डॉ. महवीर, समानान्तर प्रकाशन, ७/७ दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण २००१.
- *आर्थिक विकास, आयोजन तथा पर्यावरण*, एस. एन. लाल व एस. के. लाल, शिवम् पब्लिशर्स इलाहाबाद, २०११.
- *Readings in kautilya's Arthasastra*, B.P. Sinha, Agam Prakashan, Delhi, 1976.
- *The Wealth of Nations*, Adam Smith, London, J.M.Dent & Sons Ltd. 1ST Edt. 1776.
- *Kautilya Arthasastra,* Shastri, D, (Tr. Hindi), Allahabad, 1957.

द्वितीयक स्रोत-

- *भारत का संविधान : एक परिचय*, दुर्गादास वसु, बाधवा एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, २००९.
- *भारत 2011*, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार, 2011.
- *भारत 2012,* प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार, 2012.
- *भारतीय संस्कृति के मूलाधार*, शिवकुमार गुप्त, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, प्रथम संस्करण, 2002.
- *प्राचीन भारतीय समाज*, शशि अवस्थी, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण, 1981.
- *स्मृतिकालीन भारतीय समाज एवं संस्कृति (याज्ञवल्क्य स्मृति के विशेष संदर्भ में)*, राजदेव दुबे, प्रतिभा प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1988.
- *धर्मशास्त्र का इतिहास (5)*, काणे, पाण्डुरंग वामन, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, चतुर्थ संस्करण, 1992.
- *अशोक और मौर्य साम्राज्य का पतन,* रोमिला थापर, अनु. डी आर. चौधरी, राजेशप्रभा यादव, आदित्यनारायण सिंह, ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 2010.
- *प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति,* के. सी. श्रीवास्तव, युनाईटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, ग्यारवीं आवृत्ति, 2007.
- *State and Government in ancient India*, A.S. Altrkar, M.L.B.D., Delhi, 2009.
- *Kautilya on Rajniti*, K.P.A. Malon, Rashtriya Sanskrit Sansthan, New Delhi, 2008.

- *Hindu Polity*, K.P. Jayasawal, Chaukhambha Sanskrit Sansthan, Delhi, 2005.
- *Prachin bharat ka Samvidhan tatha nyaya vyavastha*, Krishna Kumar, Rashtriya Sanskrit Sansthan, New Delhi, 2008.
- *The Political theory in ancient India*, Beni Prasad, Allahabad, 1928.
- *Studies in ancient Indian Political Thought*, A.K. Sen, Calcutta, 1926.
- *Some aspects of ancient Indian Polity*, D.R. Bhandarkar, Banaras Hindu University, 1929.
- *Mauryan Polity*, B.R.R. Dikshitar, Madras, 1932.
- *Local Self Government in ancient India*, R.K. Mookerji, Oxford, 1920.
- *History of the Villege Communities in Western India*, A. S. Altekar, Bombay, 1926.
- *Studies in Kauṭilya*, M. V. Krishna Rao, Mysore, 1953.
- *Index Verborum to the Kautiliya Artasastra*, R. Shamsastry, Parts 13, Mysore, 1923.
- *The Minister as a Kingmaker*, I. Topa, Allahabad, 1941.
- *Devlopment of Hindu Polity and Political Theories*, Part 2, M.C. Bandopadhyaya, Calcutta, 1938.

- *An Introduction to the Study of India History*, D.D. Kaushamby, Bombay, 1956.
- *Chandragupta Maurya and his time*, R.K. Mookerji, Madras, 1943.
- *Age of the Nandas and Mauryas*, K.A. Nilkanta Sastri, Banaras, 1952.
- *Aspects of Political Ideas and Institutions in ancient India*, R.M. Sharma, Delhi, 1959.

पत्रिका-

- अर्थव्यवस्था-एक दृष्टि, मासिक, नई दिल्ली.
- Economy- At Glance, Monthly, New Delhi.
- Economic and Political Weekly, Monthly, New Delhi.

कोश-

- *अमरकोश,* अमरसिंह, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, 1961.
- *अमरकोषः ('धाराख्य' हिन्दी टीका सहित),* मन्नालाल अभिमन्यु, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, पुनर्मुद्रित सं. 2008.
- *वाचस्पत्यम् (छः भाग),* चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थमाला, ग्र. सं. 94, वाराणसी, 1969.
- *संस्कृत वाङ्मय कोश,* सं. श्रीधर भास्कर वर्णेकर, भारतीय भाषा परिषद्, कलकत्ता, 2001.
- *संस्कृत-हिन्दी कोश,* वामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 1988.

- *मानक हिन्दी कोश,* सं. रामचन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1964.
- *हिन्दी विश्वकोश (खण्ड1-12),* सं. कमलापति त्रिपाठी, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1973.
- *English-Sanskrit Dictionary*, Munsi Ram Manohar Lal, Delhi, 1976.
- *Geographical Dictionary of Ancient and Medieval India,* Monier Williams, London, Day, N. L., 1927.
- *Encyclopedia Britannica (Vols.-II, VIII, XXI),* Helen Hemingway Publication, Benton, 15th Edition, 1973-74.
- *Encyclopedia of Religion and Ethics, Vol. - VIII*, James Hestings, New York, 1980.
- *Oxford Advanced Learner's Dictionary of Current English,* A.S. Hornby, Oxford University Press, London, 2005.

अन्तर्जालीय स्रोत-

- चाणक्य: हिन्दी भास्कर कोष, वीकिपीडिया
- राष्ट्रीय पोर्टल विषयवस्तु प्रबन्धन दल, द्वारा समीक्षित: २९/०४/२०११.
- राष्ट्रीय महिला आयोग और इनके कार्य: वीकिपीडिया
- http://bharat.gov.in